ओ३म्
स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका

नूतन निष्काम पत्रिका * वर्ष-७ * अंक-९ * मुम्बई * सितम्बर-२०१६ * मूल्य-रु.९/-

वेद प्रचार सप्ताह २०१६ के कुछ चित्र

यज्ञब्रह्मा एवं वक्ता डॉ. सोमदेव शास्त्री प्रवचन देते हुए।

श्रीमती स्नेहपुरी भजन गाते हुए एवं संगत देते हुए श्री विजय तथा श्रीराम मिश्रा

श्री प्रभाकर शर्मा भजन गाते हुए एवं संगत देते हुए श्री विजय तथा श्री राम मिश्रा

यज्ञ करते हुए यजमान गण

दि. २४.८.२०१६ आर्य समाज मुंबई काकडवाड़ी ने डॉ. सोमदेव शास्त्री जी को सम्मानित किया। उस समय के चित्र

योगिराज दयानन्द

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

पण्डित ठाकुरप्रसाद के हृदय में स्वामीजी की योग-मुद्रा देखने की उत्कट अभिलाषा थी। स्वामीजी के सेवकों से पूछकर वे उस कुटिया के द्वार पर जा खड़े हुए जिसके भीतर स्वामीजी ध्यानावस्थित थे। ठाकुरप्रसादजी बहुत देर तक महाराज के दर्शन करते रहे। उन्होंने देखा कि महाराज का आसन धीरे-धीरे भूमि से उठकर अधर में स्थित हो गया। उस समय उनके मुखमण्डल की छवि अद्भुत थी, उस पर एक प्रकाशमय चक्र बना हुआ था।

एक दिन पण्डित सुन्दरलालजी अपने मित्रों सहित स्वामी जी के दर्शनार्थ आये। उस समय स्वामी जी ध्यानावस्थित थे, अत: वे सब चुपचाप बैठे रहे। कोई आध घण्टे पश्चात् स्वामी जी हँसते हुए बाहर आये। पण्डित जी ने पूछा- ''आप किस बात पर हँस रहे हैं?'' स्वामीजी ने कहा- ''एक मनुष्य मेरी ओर चला आ रहा है। कुछ देर ठहर जाइए, उसके आने पर आपको एक कौतुक दिखाई देगा।''

इस बात के आध घड़ी पश्चात् एक ब्राह्मण मिष्टान्न लिये आ पहुँचा। उसने 'स्वामीजी ! नमो नारायण' कहकर मिठाई भेंट की और कहा- ''इसमें से कुछ भोग लगाइए।'' स्वामीजी ने उसे कहा- ''लो, थोड़ी-सी मिठाई तुम भी खाओ।'' परन्तु उसने न ली। तब महाराज ने उसे डाँटकर कहा- ''लेते क्यों नहीं हो?'' वह काँप तो गया, परन्तु मिष्ठान लेने से झिझकता ही रहा। उस समय स्वामी जी ने कहा- ''यह मनुष्य हमारे लिए विष-मिश्रित मिष्टान्न लाया है।'' पण्डित सुन्दरलालजी उसके लिए पुलिस बुलवाने लगे, परन्तु महाराज ने कहा- ''देखो! यह अपने पाप के कारण कितना काँप रहा है। इसे पर्याप्त दण्ड मिल गया है, अत: पुलिस न बुलवाएँ।'' महाराज ने उस ब्राह्मण को शिक्षा दी और छोड़ दिया।

स्वामीजी नियत कार्यों को करके ही विश्राम लिया करते थे। वे नियत कार्य के समय शारीरिक सुख -दु:ख पर कुछ भी ध्यान नहीं देते थे। एक दिन स्वामीजी के व्याख्यान की घोषणा हो चुकी थी, परन्तु उस दिन उन्हें प्रबल ज्वर आ गया। प्रेमी जनों ने बहुतेरा कहा कि आज व्याख्यान न दीजिए, परन्तु महाराज ये शब्द कहते हुए व्याख्यान-स्थल की ओर चल पड़े कि ज्वर अपना काम करता है और मैं अपना काम किये चला जाऊँगा।

महाराज कर्म-धर्म को अति प्रधानता देते थे। परहितार्थ क्रियात्मक जीवन को ही सर्वोत्तम जीवन मानते थे। प्रयाग में गङ्गा-तट पर एक महात्मा रहते थे। वे वयोवृद्ध थे। जब कभी स्वामीजी उन्हें मिलते तो वे उन्हें बच्चा कहकर सम्बोधित करते थे। एक दिन जब उस वृद्ध सन्त ने स्वामीजी से कहा-''बच्चा! यदि आप पहले से ही निवृत्ति-मार्ग पर स्थिर रहते, परोपकार के झगड़े में न पड़ते तो आपकी इसी जन्म में मुक्ति हो जाती। अब तो आपको एक और जन्म-धारण करना पड़ेगा।''

स्वामीजी ने कहा- ''महात्मन्! अब मुझे अपनी मुक्ति का कुछ भी ध्यान नहीं है। जिन लाखों मनुष्यों की मुक्ति की चिन्ता मेरे चित्त को चलायमान कर रही है, उनकी मुक्ति हो जाए, मुझे भले ही कई जन्म क्यों न धारण करने पड़ें। दु:खों के त्रास से, दीन-दशा से और दुर्बल अवस्था से परम पिता के पुत्रों को मुक्ति दिलाते, मैं आप-ही-आप मुक्त हो जाऊँगा।''

जिस समय महाराज प्रयाग में अमृत-वर्षा कर रहे थे, उस समय उनके पास लगातार मुम्बई-वासियों के निमन्त्रण आ रहे थे। वहाँ के भक्तजन उनके दर्शनों के लिए उत्कण्ठित और उपदेश- श्रवण के लिए उत्सुक हो रहे थे। उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर महाराज आश्विन शुक्ल १२ संवत् १९३१ को मुम्बई पहुँचे। जिस समय महाराज स्टेशन पर पहुँचे उस समय अनेक भद्र पुरुष उनके स्वागत के लिए उपस्थित थे। उन्होंने आदरपूर्वक स्वामीजी को प्रतिग्रहण कर बालकेश्वर में उनके निवास की व्यवस्था की।

अगले दिन से महाराज के व्याख्यान होने लगे। सहस्त्रों मनुष्य सत्संग में आने लगे। मुम्बई में वल्लभ-सम्प्रदाय का विशेष जोर था। स्वामीजी ने उसी का खण्डन करना आरम्भ कर दिया। स्वामीजी के प्रबल खण्डन से मतवादियों में हलचल पैदा हो गई।

गोकुलिये गोसाइयों में जीवनजी गोसाई बहुत चलतापुर्जा था। उसने स्वामीजी के सेवक बलदेवसिंह को गुप्तरूप से बुलाकर कहा- ''यदि तुम विषादि देकर दयानन्द को समाप्त कर दो तो हम तुम्हें एक सहस्र रुपया देंगे।'' उस समय उसे पाँच रुपये, पाँच सेर मिठाई दी और एक सहस्र रुपये देने का पत्र भी लिख दिया।

जैसे ही बलदेवसिंह लौटकर डेरे पर आया तो मानस चक्षुओं से दूसरों के गुप्त भावों को पढ़ लेनेवाले दयानन्दजी ने पूछा- ''क्या तुम गोकुलियों के यहाँ गये थे? बताओ क्या ठहरा? सेवक ने सब-कुछ सच-सच बता दिया। तब स्वामीजी ने कहा- ''देखो ! मुझे कई बार विष दिया गया है, परन्तु मैं मरा नहीं। अब भी नहीं मरूँगा।'' सेवक ने महाराज के चरण पकड़कर क्षमा माँगी और प्रण किया कि भविष्य में कभी गोसाइयों के पास नहीं जाऊँगा।

कुछ लोग स्वामीजी का पीछा करने लगे ताकि अवसर पाकर काँटे को उखाड़ दें, परन्तु सफलता प्राप्त नहीं हुई। स्वामीजी निर्भय थे, परन्तु असावधान नहीं थे। बहुत-सी आपत्तियाँ तो उनकी सावधानता से ही दूर हो जाती थीं।

सावधानता स्वामीजी का विशेष गुण था। अपने डेरे की छोटी-सी-छोटी बात पर स्वामीजी की दृष्टि रहती थी। बम्बई के एक सेठ ने दुकान पर कह छोड़ा था कि 'स्वामीजी के नौकर खाने-पीने का जो सामान लेने आएँ वह दे दिया जाए और बिल मेरे पास भेज दिया जाए।' एक बार जाँच करने पर स्वामीजी को पत्ता चला, कि आवश्यकता से सात गुणा अधिक सामान डेरे पर आया है; नौकर लोग अधिक सामान लेकर उसे बेचकर अपनी मुट्ठी गर्म कर रहे थे। स्वामीजी ने दो अपराधी नौकरों को तुरन्त सेवा से पृथक् कर दिया।

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र

वर्ष : ७ अंक ९ (सितम्बर-२०१६)

- दयानंदाब्द : १९३, विक्रम सम्वत् : २०७३
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११७

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य

संपादक : संगीत आर्य

सह संपादक : संदीप आर्य

कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री

लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य, यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- • एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- • वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- • आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-

चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें।

'नूतन निष्काम पत्रिका' का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़

(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई -५४. फोन: २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
योगिराज दयानन्द	२
सम्पादकीय	३
यज्ञ का सार-तथा प्रकार-तथा प्रकृत्ति की	४
एकता/मुझे ऐसा बना दो मेरे पिता,	५
सनातन धर्म रक्षक आर्य समाज	६-७
आर्य समाज सान्ताक्रुज़ में वेद प्रचार समारोह सम्पन्न	७
अभिनन्दन पत्रम्	८
सुपुत्र की प्रशंसा	९
अन्धविश्वास के जीवन की समाप्ति	१०
विचार शक्ति का चमत्कार /पं. गणेशप्रसाद शर्मा	११
जीवन के चार गुण	१२-१३
क्रोध	१४
ऋषि दयानन्द	१५-१६

सम्पादकीय

महर्षि दयानन्द और गौ

गोकरूणानिधि में एक जगह महर्षि दयानन्द सरस्वती ने एक गाय के हिसाब से कितने मनुष्यों को लाभ मिल सकता है, वह लिखा है। जो एक गाय न्यून-से- न्यून दो सेर दूध देती हो और दूसरी बीस सेर, तो प्रत्येक गाय के ग्यारह सेर दूध होने में कोई शङ्का नहीं। इस हिसाब से एक मास में सवा आठ मन दूध होता है। एक गाय कम से कम ६महीने और दूसरी अधिक सेअधिक १८महीने तक दूध देती है, तो दोनों का मध्यभाग प्रत्येक गाय के दूध देने में बारह महीने होते हैं। इस हिसाब से बारह महीनों का दूध निन्नानवे मन होता है। इतने दूध को औंटाकर प्रति सेर में छटांक चावल और डेढ़ छटांक चीनी डालकर खीर बना खावें, तो प्रत्येक पुरूष के लिए दो सेर दूध की खीर पुष्कल होती है, क्योंकि यह भी एक मध्यभाग की गिनती है, अर्थात् कोई दो सेर दूध की खीर से अधिक खाएगा और कोई न्यून, इस हिसाब से एक प्रसूता गाय के दूध से १९८० एक हजार नवसौ अस्सी मनुष्य एक बार तृप्त होते हैं। गाय न्यून-से- न्यून ८ और अधिक-से-अधिक १८ बार ब्याती है, इसका मध्य भाग तेरह बार आया, तो२५,७४० पच्चीस हज़ार सातसौ चालीस मनुष्य एक गाय के जन्मभर के दूधमात्र से एक बार तृप्त हो सकते हैं।

भारतीय नस्ल की गायों की उपयोगिता आज दुनिया वैज्ञानिक कसौटी पर मान रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने उदयपुर नरेश महाराणा सज्जनसिंह से जोधपुर नरेश को पत्र लिखवाकर अपने राज्य में गोवध बन्द करने की प्रेरणा की। उन्होंने निश्चय किया कि गोवध पर प्रतिबंध लगाने विषयक प्रतिवेदन पर दो करोड़ भारतवासियों के हस्ताक्षर करवाकर ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया को भेजा जाये। हस्ताक्षर अभियान के मध्य में ही महर्षि का निधन हो गया था। इस प्रतिवेदन पर हस्ताक्षर करने वालों में मुसलमानों, ईसाइयों की संख्या कम नहीं थी और यह भी कि गाय, बैलों के अतिरिक्त उस में भैसों की हत्या पर भी रोक लगाने की मांग की गयी थी। गौ की उपयोगिता का विश्लेषण महर्षि ने अर्थनीति के आधार पर किया था। आज भी अर्थनीति के आधार पर यदि हम व्यवहार, आचरण करें और अपने जीवन में, गौ दुग्ध, गौघृत की आदि का ही इस्तेमाल करने का संकल्प लें तो जिसकी मांग हो, व्यापारी उसी की पूर्ति करता है। बड़े - बड़े उद्योगपति गो दुग्ध के व्यवसाय में ही अपनी पूंजी लगायेंगे, क्यों कि मांग के आधार पर ही आपूर्ति व वितरण बढ़ता है। यदि हम वास्तव में गौ का पालन व संवर्धन चाहते हैं तो अपने जीवन में सिर्फ गो दुग्ध, गो घी के इस्तेमाल का संकल्प लेना होगा। इससे गौ का सम्मान व राष्ट्र में समृद्धि स्वतः आ जायेगी। खेदः गत् अंक में Milk लेख के शीर्षक में स्वास्थ्य संबंधी एक लेख छप गया था। उस में दूध को पशु का अंश कहकर Non - Vegetarian श्रेणी में रखा है। संपादक इस वाक्य से सहमत नहीं हैं, तथापि पाठकों की भावना को इससे ठेस पहुँची है उसके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं। इसीलिये इस बार का संपादकीय महर्षि की मान्यता को सामने रखकर अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने हेतु लिखा है।

- संगीत आर्य- 9323 573 892

यज्ञ का सार-तथा प्रकार-तथा प्रकृत्ति की प्रवृति अनुकरण यज्ञ किसे कहते हैं

पं. उम्मेदसिंह विशारद
मो. : 9411512019

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी कहते हैं कि यज्ञ उसको कहते हैं जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथा योग्य शिल्प, अर्थात रसायन जो कि पदार्थ विद्या, उसमें उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान, अग्निहोत्र आदि जिनसे वायु-वृष्टि-जल औषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है, उसको उत्तम समझता हूँ।

अग्नये परमेश्वराय जलवायुशुद्धिकरणाय च होत्र हवनं यस्मिन कर्मणि कियते तदग्निहोत्रम-।।

अर्थात-अग्नि वा परमेश्वर के लिये जल और पवन की शुद्धि व ईश्वर की आज्ञापालन करने के अर्थ होत्र जो हवन अर्थात दान करते हैं उसे अग्निहोत्र कहते हैं।

यज्ञ का सार

राजा जनक द्वारा यज्ञ के अवसर पर ऋषि उद्दालक द्वारा पूछे गये प्रश्न-

१- किं स्विद: यज्ञस्य आत्मा-) यज्ञ की आत्मा क्या है?
उ. स्वाहा यज्ञस्य आत्मा-) स्वाहा यज्ञ की आत्मा है।
२- किं स्विद: यज्ञस्य प्राण-) यज्ञ का प्राण क्या है?
उ. न मम यज्ञस्य प्राण-) 'इदं न मम' मेरा कुछ नहीं यज्ञ का प्राण है
३- किं स्विद: यज्ञस्य सार-) यज्ञ का सार क्या है?
उ. सुरभि यज्ञस्य सार-) सुगन्धि यज्ञ का सार है।

- विचार- जन्म में मृत्यु तक अग्निहोत्र से अश्वमेध यज्ञ तक सत कर्म व्यवहार
- नित्य सात्विक आत्म विचार
- परोपकारी कर्म,
- दान तथा प्रकृति द्वारा नित्य सतत् पदार्थों द्वारा लोक कल्याण क्रिया का आत्मबोध
- निस्वार्थ प्राणी मात्र की सेवा
- निरअंहकारी जीवन व्यतीत तथा लोक प्रियता प्राप्ति में भी सम रहना ही वास्तिविक यज्ञ है।

त्रिविध यज्ञ

१. **सात्विक यज्ञ**- निस्वार्थ भाव से फल की इच्छाओं को छोड़ कर जो अग्निहोत्र-परोपकारी कार्य-वेदानुसार ईश्वरीय आज्ञा का पालन प्रकृति के पदार्थ जैसे सूर्य चन्द्रमा, वायु, जल, पृथ्वी, अन्न व नक्षत्र आदि के परोपकारी कार्यों की नित्यता आदि से अपने को जोड़ना ही सात्विक यज्ञ है।

२. **राजसिक यज्ञ**- अर्थात फल की इच्छा वैभव प्रदर्शन

- ऐश्वर्य प्रदर्शन के लिये जो अर्थात- इस भौतिक युग में समृद्ध मानवों द्वारा जो भी यज्ञ व परोपकार दान व सामाजिक कार्य, की वाहवाही के लिये उत्सुक होना
- दिये गये दान को शिलालेखों पर अंकित कराने की प्रवृत्ति
- तथा सत्संग व अन्य सभाओं में उच्च स्थान पर बैठने की प्रबल इच्छा
- तथा विद्वत्ता होने पर सम्मान न मिलने का रोष आदि ये सब राजसिक यज्ञ कहलाते हैं।

३. **तामसिक यज्ञ**- अपने निजि स्वार्थ के लिये विधि विहीन यज्ञ करना और जहाँ सम्मान मिले वही दान देना

- व अपने घरों में उत्तम विद्वानों द्वारा यज्ञ व संस्कार न कराना
- तथा बड़े-बड़े यज्ञों को कराकर अपना नाम ऊंचा कराने की प्रवृत्ति
- तथा अहंकार की अधिकता
- तथा दिये दान, व विदवत्ता, सम्पन्नता, व पद का अभिमान होना तथा लोकप्रियता के लिये यज्ञों को कराना आदि आदि तामसिक यज्ञ तथा प्रतिस्पर्धा हेतु यज्ञ करना भी तामसिक यज्ञ कहलाते हैं।

यज्ञ के प्रकार

भगवत् गीता में योगी राज श्री कृष्ण ने १२ प्रकार के यज्ञ बताऐ हैं-

१. **ब्रह्म यज्ञ**- प्रत्येक क्रिया को आत्मानुकूल करने के लिये साधनों को आत्मा के लिये साध्य बनाना-।

२. **भगवत रुप यज्ञ**- प्रत्येक कृत्य को ईश्वरीय आज्ञा अर्थात सत्य को आधार मान कर करना-।

३. **अभिन्नतमरुप यज्ञ**- असत्य कर्म से विमुख होकर अन्तकरण में ईश्वर की स्तुति में लीन होना, अर्थात ईश्वर से भिन्न अपनी सत्ता न समझना अपनी सत्ता को ईश्वर प्रदत्त समझना।

४. **सयंम रुप यज्ञ**- अपनी कर्मोन्द्रियों को विषयों से पृथक रखना-।

५. **विषय हवन रुप यज्ञ**- व्यवहार काल में इन्द्रियों को विषयों में संयोग होने पर भी उनमें राग द्वेष पैदा न होने देना-।

६. **समासधि रुप यज्ञ:** मन बुद्धि सहित सम्पूर्ण इन्द्रियों को विषयों में प्रवृत न होने देना। मन बुद्धि समस्त इन्द्रियों को रोक कर ज्ञान से समाधि में स्थित हो जाना।

७. **द्रव्ययज्ञ:**- सम्पूर्ण प्राप्त पदार्थों व धन को अपने लिये सामान्य रख कर निस्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा में लगा देना।

८. **तपोयज्ञ:**- प्रत्येक यज्ञीय, परोपकारी कार्य व जीविका उपार्जन साधन में पुरूषार्थ से सत्य चलना तथा प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थितियों को प्रसन्नता पूर्वक सहन करके सम रहना।

९. **योग यज्ञ:**- प्रत्येक क्षण ईश्वर का आभाष होना, तथा ईश्वर

को, सत्य करो, आर्ष ज्ञान को आत्म साध कर समाधिस्त होना और ईश्वर को अपना परम मित्र समझना।

१०. **स्वध्याय रुप ज्ञान यज्ञ:**- सृष्टिक्रम ज्ञान, आर्षज्ञान, शास्त्रों का नित्य स्वध्याय करके, परोपकार हेतु अर्जित ज्ञान को दूसरों को बाँटना।

११. **प्राणायाम रुप यज्ञ:**- प्रत्येक प्राणायाम द्वारा इन्द्रियों को व शरीर को स्वस्थ्य रखना तथा संयमित करके व दीर्घ आयु बनाना।

१२. **सतम्वृत्ति यज्ञ:**- नियमित दिनचर्या, नियमित सात्विक आहार अपनी वृतियों पर अधिकार व अपने प्राणों को केन्द्रित करके इच्छानुसार कार्य लेना।

ध्यानाकर्षण

महर्षि दयानन्द सरस्वती को संसार को सर्वोच्च देन यज्ञों से जोड़ना है प्राचीन पद्धति वेदानुकूल उत्तम समाग्री द्वारा यज्ञों को करना उनको नित्य क्रम में शामिल करना, उनका आदेश है।

ऋग्वेद में पहला मंत्र अग्निमिळे पुरोहितं यज्ञस्य से प्रारम्भ हुआ है क्योंकि अग्नि द्वारा ही संसार चल रहा है। ईश्वर ने प्रत्येक जीव व पदार्थों में अग्नि को दिया है अग्नि जीवन का आधार है। अग्नि है, सूर्य की किरणों प्रथम अतिथि के रूप में अग्नि ही है। इसलिए हमारा सर्व प्रथम देवता अग्नि है। यदि अग्नि न हो तो सम्पूर्ण ब्रह्मांड एक क्षण भी न चले।

यज्ञ की अग्नि हमारे जीवन को दीर्घायु निरोग व सात्विक बनाती है अग्नि का गुण है पदार्थ को सूक्ष्म करके उसकी गुणवता का विस्तार करना, अग्नि पदार्थ को कई गुणा बढ़ा देती है। यह शक्ति केवल अग्नि तत्व में ही है, अन्य किसी भी तत्व में नही है। जल में कोई पदार्थ डाले तो सड़ जायेगा, वायु में कोई पदार्थ चूर्ण बना कर डाले तो वह उड़ कर नष्ट हो जायेगा। पृथ्वी पर कोई पदार्थ डाले तो वह सड़कर दुर्गन्ध पैदा करेगा। अग्नि में कोई भी पदार्थ डालें तो वह उसे सूक्ष्म करके कई गुना बढ़ा देती है। अर्थात अग्नि सम्पूर्ण ब्रह्मांड को सक्रिय किये हुए है।

यज्ञ की आहुति अग्नि द्वारा अविलम्ब तीनों लोकों मे पहुँच जाती है, वह वायु लोक, विद्युत लोक, इन्द्रलोक देवों के सानिध्य से तीनों लोकों में पहुँच जाती है। पृथ्वी का देवता अग्नि है। अग्नि के कई रुप है व मुख है। काली, कराली, लाल, रक्तीय, आदि। इसलिये प्राचीन मनीषियों ने वेदानुसार मानव जीवन के सोलह संस्कारों में अग्नि को माध्यम बनाया है और संसार का प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी रुप में चाहे वह अग्निहोत्र हो चाहे मोमबत्ती, अगरबत्ती, धूपबत्ती, दिया आदि हो। अग्नि को प्रथम रख कर ईश्वर की अराधना करता है। जीवन की दिनचर्या में प्रत्येक सात्विक कार्य वेदानुकूल कार्य ही वास्तविक यज्ञ है।

आदरणीय पाठक जी, यह तो यज्ञ के संक्षिप्त भौतिक व लौकिक लाभ का वर्णन किया है इससे कही अधिक आध्यात्मिक लाभ मिलते हैं।

पता- गढ़ निवास मोहकमपुर देहरादून
उत्तराखण्ड

एकता

रोज उठता है धुआं,
कोठियों से,
चिमनियो से, घरों से,
रंग सबका किन्तु काला
और काली नीति इसकी।
रंग इसका क्या बताता है जगत को
यदि चाहते हो उठना गगन में,
निकल जाओ,
झोपडियों से,
कच्चे मकानों से,
भवनों से
और एक हो जाओ
कि कोई फिर न पाए जान तुमको
तुम कहाँ से आ रहे थे,
तुम तभी ऊपर उठोगे ॥

ओम प्रकाश अडिंग

मुझे ऐसा बना दो मेरे पिता,

मुझे ऐसा बना दो मेरे पिता,
जिससे ठोकर लगे न कही।
पिता सुपथ की राह दिखावे जिससे ठोकर लगे न कही।
जिससे वह झुके न कहीं।
पिता परमात्मा एक समान वेद देते हमको यही ज्ञान।
'कर्म ही पूजा' का उपदेश करे, आलस प्रमाद करे न कहीं ॥१॥

पिता स्वयं सखा सुक्ला खावे, पौष्टिक खिला ता हैसंतान को।
पिता अपनी कष्ट कमाई का, एक रुपया भी खोता न कहीं ॥२॥

पिता बसावे संतान को, भगवान बसाता जहान को।
लिखा पढ़ा के विद्वान बनावे, जिससे घोखा खए न कही ॥३॥

स्वयं फटे-पुराने पहिने, संतान के लिए नए सिलावे।
जिससे जाने अनजानेभी, वह अपमानित न होवे कही ॥४॥

सेवा-सुश्रुषा करे जो पिता की, वह पाये मेवा सारे जग की।
''यज्ञमुनि:'' बैठ पिता चरणों में, कहे स्वर्ग और न कहीं ॥५॥

स्वामी यज्ञमुनि:
(०७५७९०४४९५४)

सनातन धर्म रक्षक आर्य समाज

प्रकाश आर्य

आर्य शब्द हमारी संस्कृति सम्मानजनक शब्द है। हमारे वेदों में सनातन धर्म ग्रंथों में रामायण, गीता, महाभारत, नीतियों में श्रेष्ठ पुरुषों को आर्य कहकर ही सम्बोधित किया जाता था, भगवान राम, भगवान श्रीकृष्ण, धर्मराज युधिष्ठिर, अर्जुन को भी आर्य नाम से संबोधित किया गया है।

हिन्दू शब्द मुगलकालीन समय से मुगलों द्वारा दिया गया है, आर्य का अर्थ होता है श्रेष्ठ। आर्य समाज की ठीक से पहचान न होने के कारण समाज इसके महत्त्व को समझ ही नहीं पाया। जबकि सत्य सनातन धर्म को पूरी तरह मानते हुए और उसका प्रचार करना इसका मुख्य उद्देश्य है।

भारतवर्ष के अतिरिक्त ३० से अधिक देशों में इसकी शाखाएं फैली हुई है, जिसके अन्तर्गत आर्य समाज मन्दिर, वृद्धाश्रम, गुरुकुल, अनाथालय, अस्पताल, विद्यालय, महाविद्यालय, विश्व विद्यालय, गौ शालाएं, व्यायामशालाएं, योगासन केन्द्र आदि हजारों की संख्या में संचालित होते हैं।

सनातन धर्म का उद्‌गम वेदों से हुआ है। ये वेद परमात्मा की वाणी हैं। संसार का सबसे पहला ज्ञान, सबसे पहली संस्कृति, यही ईश्वरीय ज्ञान है। यह सबके लिए, सदा के लिए तथा मानव जीवन की सभी पवित्र इच्छाओं को पूर्ण करने का ज्ञान इसमें समाहित है। सुख, शान्ति, मोक्ष सम्पन्नता, स्वास्थ ज्ञान, विज्ञान, व्यापार, परिवार, समाज, राष्ट्र और अनेक विद्याओं का भण्डार यह वेद है। पूर्ण ज्ञान का भण्डार इसलिए है क्योंकि यह उस पूर्ण परमात्मा का ज्ञान है। यह सदा से है और सदा रहेगा, इसलिए **इसे सनातन कहते हैं।** बस, आर्य समाज इसी पवित्र सनातन धर्म को मानता है और उसका प्रचार-प्रसार करने के लिए बनी एक संस्था है। आर्य समाज महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित किया गया है किन्तु उनकी अपनी कोई विचारधारा के आधार पर या किसी अन्य विचारधारा के आधार पर स्थापित नहीं है, यह पूर्ण सनातन वैदिक धर्म पर आधारित है।

आर्य समाज भगवान श्री रामचन्द्र और भगवान श्री श्रीकृष्ण जी के आदर्शों को पूर्ण स्थान देता है। क्योंकि जिस ज्ञान का सन्देश इन दोनों महापुरूषों ने दिया वह सब वेदों के अनुसार ही है। इनका अपना जीवन पूर्ण रूप से सत्य सनातन वैदिक धर्म के अनुसार ही था।

आर्य समाज आध्यात्म, समाज और राष्ट्रीय विचारधारा के कार्यों को करने वाला विश्व का एकमात्र संगठन है जिसमें इन तीनों विषयों पर कार्य किया जाता है।

आर्य समाज की कुछ उपलब्धियाँ और मान्यताएं इस प्रकार हैं -

१. **वेदों से परिचय** - वेदों के संबंध में यह कहा जाता था कि वेद तो लुप्त हो गए, पाताल में चले गए। किन्तु महर्षि दयानन्द के प्रयास से पुन: वेदों का परिचय समाज को हुआ और आर्य समाज ने उसे देश में ही नहीं अपितु विदेशों में भी पहुँचाने का कार्य किया।

२. **सबको पढ़ने का अधिकार**- वेद के संबंध में यह प्रतिबन्ध था कि वेद स्त्री और शूद्र को पढ़ने या सुनने का अधिकार भी नहीं था। किन्तु आज आर्य समाज के प्रयास से हजारों महिलाओं ने, एवं जिन्हें शूद्र मानकर उपेक्षित किया जाता था उन्हें भी यह अधिकार आर्य समाज ने दिलवाया। वेद पढ़कर ज्ञान प्राप्त किया और वे वेद की विद्वान है।

३. **जातिवाद का अन्त**- आर्य समाज जन्म से जाति को नहीं मानता। समस्त मानव एक ही जाति के हैं। गुण, कर्म के अनुसार वर्ण व्यवस्था को आर्य समाज मानता है।

४. **स्त्री शिक्षा** -स्त्री को शिक्षा का अधिकार नहीं है, ऐसी मान्यता प्रचलित थी। महर्षि दयानन्द ने इसका खण्डन किया और सबसे पहला कन्या विद्यालय आर्य समाज की ओर से प्रारंभ किया।

५. **विधवा विवाह** - महर्षि दयानन्द के पूर्व विधवा समाज के लिए एक अपशगुन समझी जाती थी। आर्य समाज ने इस कुरीति का विरोध किया तथा विधवा विवाह को मान्यता दिलवाने का प्रयास किया।

६. **छुआछूत का विरोध** -आर्य समाज ने सबसे पहले जातिगत ऊँच-नींच के भेदभाव को तोड़ने की पहल की। अछूतोद्वार के संबंध में आर्य संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द ने अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन में सबसे पहले यह प्रस्ताव रखा।

७. **राष्ट्र चिन्तन** - परतन्त्र भारत को आजाद कराने में महर्षि दयानन्द को प्रथम पुरोधा कहा गया। सन् १८५७ के समय से ही महर्षि ने अंग्रेज शासन के विरूद्ध जनजागरण प्रारंभ कर दिया था। स्वतन्त्रता आन्दोलनकारियों के अनुसार स्वतन्त्रता के लिए ८० प्रतिशत व्यक्ति आर्य समाज के माध्यम से आए थे।

८. **गुरुकुल** - सनातन धर्म की शिक्षा व संस्कृति के ज्ञान केन्द्र गुरुकुल थे, प्राय: गुरुकुल परम्परा लुप्त हो चुकी थी। आर्य समाज ने पुन: उन्हें शुरू किया।

९. **गौरक्षा अभियान** -ब्रिटिश शासन के समय से ही महर्षि ने गाय को राष्ट्रीय पशु घोषित करने व गौवध पर पाबन्दी लगाने का प्रयास प्रारंभ कर दिया था। गौ करूणा निधि नामक पुस्तक लिखकर गौवंश के महत्व को बताया।

१०. **हिन्दी को प्रोत्साह** - स्वामी दयानन्द सरस्वती ने राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने के लिए एक भाषा को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा दिलाने के लिए सर्वप्रथम प्रयास किया।

११. **यज्ञ** - सनातन धर्म में यज्ञ का बहुत महत्व है। जितने भी शुभ कर्म होते हैं उनमें यज्ञ अवश्य किया जाता है। किन्तु यज्ञ का स्वरूप बिगाड़ दिया गया था। ऐसी स्थिति में यज्ञ के सनातन स्वरूप का

पुन: आर्य समाज ने स्थापित किया, जन-जन तक उसका प्रचार किया और लाखों व्यक्ति नित्य हवन करने लगे।

१२. **शुद्धि संस्कार व सनातन धर्म रक्षा** - सनातन धर्म से दूर हो गए अनेक हिन्दुओं को पुन: शुद्धि कर सनातन धर्म में प्रवेश देने का कार्य आर्य समाज ने ही प्रारंभ किया।

सन् १९८३ में दक्षिण भारत मिनाक्षीपुरम् में पूरे गॉव को मुस्लिम बना दिया था शिव मन्दिर को मस्जिद बना दिया था। सम्पूर्ण भारत से आर्य समाज द्वारा आन्दोलन किया गया और वहां जाकर हजारों आर्य समाजियों ने शुद्धि हेतु प्रयास किया और पुन: सनातन धर्म में सभी को दीक्षित किया। मन्दिर की पुन: स्थापना की।

काश्मीर में जब हिन्दुओं के मन्दिर तोड़ना प्रारंभ हुआ तो उनकी ओर से आर्य समाज ने प्रयास किया और शासन से करोड़ों का मुआवजा दिलवाया।

ऐसे अनेक कार्य हैं, जिनमें आर्य समाज सनातन धर्म की रक्षा के लिए आगे आया और संघर्ष किया बलिदान भी दिया।

१३. **धर्म व ईश्वर** - सबका धर्म व ईश्वर एक है, बिना धर्म के मानव, मानव नहीं तथा बिना ईश्वर के सानिध्य के जीवन सफल नहीं है। बिना ईश्वर के कुछ भी संभव नहीं है।

१४. **पंच महायज्ञ** - प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन **ब्रह्मयज्ञ** (संध्या, ईश्वर का गुणगान), **देव यज्ञ**- हवन, अग्निहोत्र, **पितृयज्ञ** - माता-पिता, गुरु की सेवा सत्कार, **अतिथि यज्ञ** घर आए हितैषी, विद्वान का सत्कार, **बलिवैश्य यज्ञ**- अपने पर आश्रित पशु, कीट, पतंगों को भोजन ।

१५. बाल विवाह, सती प्रथा एवं दहेज का विरोध किया।

आर्य समाज न होता तो, वेदों का मान कहाँ होता, सब कुछ होता लेकिन, हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान नहीं होता। धर्म कर्म की गजियाँ अपनी-अपनी राहों पर जाती हैं,

राह भिन्न हो तो मंजिल दूर रह जाती है।

कर्म महान न हो तो कर्ता कभी महान नहीं होता, सब कुछ होता लेकिन, हिन्दु, हिन्दुस्तान नहीं होता।

आर्य समाज के १० नियमों में ये दो भी हैं-

* संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
* प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में संतुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

तो आईए, इस मानव हितैषी संगठन से जुड़कर सनातन धर्म, समाज व राष्ट्र की उन्नति में भागीदार बनिए। साथ ही प्रत्येक रविवार को आर्य समाज के सत्संग में पधारकर जीवन लाभ प्राप्त करें।

मंत्री- सार्वदेशिक आर्य प्रतिनधि सभा, दिल्ली
मो. : ०९८२६६-५५११७
E-mail : prakasharyamhow@gmail.com

आर्य समाज सान्ताक्रुज़ में वेद प्रचार समारोह सम्पन्न

आर्य समाज सान्ताक्रुज़ (प.) मुम्बई द्वारा शुक्रवार दि. 26 अगस्त से रविवार दि. 28 अगस्त, 2016 तक आर्य समाज सान्ताक्रुज के बृहद सभागार में वेद प्रचार समारोह उत्साहपूर्वक मनाया गया। इस अवसर पर प्रतिदिन प्रात: 8.00 से 10.00 बजे तक ''ऋग्वेद यज्ञ'' का आयोजन किया गया। यज्ञ के ब्रह्मा एवं वक्ता डॉ. सोमदेव शास्त्री जी (मुम्बई) थे। यज्ञ में वेदपाठी पं.नामदेव आर्य, पं. विनोद कुमार शास्त्री, पं. नरेन्द्र शास्त्री, पं. प्रभारंजन पाठक एवं पं. नचिकेता शास्त्री थे। रात्रि कालीनसत्रा में 7.45 से 9. 30 बजे तक प्रवचन डॉ. सोमदेव शास्त्री जी एवं भजनोपदेश श्रीमती स्नेह पुरी, श्री प्रभाकर शर्मा जी के होते रहे।

वेद प्रचार के शुभावसर पर द्विदिवसीय पूर्ण रहिवासी शिविर रखा गया। उसके अध्यक्ष व संचालनकर्ता डॉ. सोमदेव शास्त्री जी थे।

इसी क्रम में रविवार दि. 28 अगस्त, 2016 को त्रि दिवसीय ऋग्वेद यज्ञ की पूर्णाहुति प्रात: 8.00 से 09.45 बजे तक हुई। प्रात:राश के पश्चात् 10.00 बजे से कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। तदन्तर सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक श्रीमती स्नेह पुरी व श्री प्रभाकर शर्मा जी ने प्रभु भक्ति एवं स्वामी दयानन्द पर आधारित सुन्दर गीत प्रस्तुत किये। डॉ. सोमदेव शास्त्री जी ने वेद मंत्रो की सुंदर व्याख्या करते हुए तर्को प्रमाणो तथ्यों उदाहरणों से श्रोताओं को लाभान्वित किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद का प्रचार प्रसार किया था तथा आर्य समाज की स्थापना भी इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए की थी अत: हम सबको वेदों का सार्वजनिक प्रचार प्रसार करना होगा। ईश्वर एक हैं उसी एक शुद्धतम ईश्वर की उपासना करके ही लोग कष्टों से मुक्त हो सकेंगे। आप के वैदिक सिद्धान्तों से ओत - प्रोत सारगर्भित, प्रेरणादायक प्रवचन हुए। आर्य समाज सान्ताक्रुज़ के प्रधान श्री चन्द्रगुप्त आर्य तथा श्री लालचन्द आर्य ने आमंत्रित अतिथिओं का माल्यार्पण कर अभिनन्दन किया। प्रधान जी ने सभी उपस्थित विद्वानों, अतिथियों, श्रोताओं एवं कार्यकत्ताओं तथा सहयोगियों एवं दानदाताओं का हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए धन्यवाद दिया। मन्त्री श्री संदीप आर्य तथा मन्त्री श्री रमेश आर्य एवं महामन्त्री श्री संगीत आर्य ने क्रमश: सम्पूर्ण कार्यक्रम का संचालन किया। शान्तिपाठ एवं जयघोष के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। ततपश्चात सभी ने प्रीति भोज का आनन्द लिया।

आर्य समाज मुम्बई द्वारा डॉ. सोमदेव शास्त्री जी का सम्मान

महर्षि दयानन्द के आदर्श अनुयायी, वैदिक धर्म के कुशल उपदेशक आर्य समाज के सिद्धांतों के सजग प्रहरी, वैदिक साहित्य के (सिद्ध) हस्त लेखक एवं प्रखर वक्ता डा. सोमदेव शास्त्री जी की सेवा में सादर समर्पित

* अभिनन्दन पत्रम् *

सम्मान्य डा. सोमदेवजी शास्त्री का जन्म ६ दिसंबर १९५० में ग्राम-नेनोटा, जिला-मन्दसौर, (म.प्र.) श्री भवानीरामजी शर्मा के यहाँ हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम में हुई। तत्पश्चात् गुरुकुल झज्जर (हरियाणा), प्रभात आश्रम मेरठ तथा पाणिनि महाविद्यालय बनारस में व्याकरण निरुक्त दर्शन एवं वेदादि शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करके शास्त्री-आचार्य, एम.ए. तथा पी.-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की।

गुरुकुल से अध्ययन करने के बाद आपने मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, आन्ध्रपदेश, राजस्थान और मुंबई (महाराष्ट्र) में संस्कृत शिक्षण शिबिर तथा योगासन शिबिर के माध्यम से वैदिक धर्म के प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया। जिन क्षेत्रों की जनता आर्य समाज से अपरिचित थी ऐसे वनवासी क्षेत्रों में संस्कृत और योगासन शिक्षण के माध्यम से आपने अनेकानेक व्यक्तियों को वेद, ऋषि दयानन्द और आर्य समाज के सिद्धांतो से परिचय कराकर आर्य समाज के कार्यों को प्रारम्भ कराया। आपने अनेक बुद्धिजीवियों को वैदिक धर्मानुरागी बनाकर उनके परिवारों में पंच महायज्ञों की परम्परा प्रारम्भ करने का प्रशंसनीय कार्य किया है।

वैदिक सिद्धांतों और ऋषि दयानन्द के ग्रंथो में जहाँ पर भी कोई परिवर्तन करने की चेष्टा करता है, उसका आप पूरी तरह से अपनी वाणी और लेखनी से विरोध करके आर्य समाज के सजग प्रहारी के रुप में उपस्थित हो जाते है। विद्वानों, संन्यासियों तथा उपदेशकों को वृद्धावस्था में निराशा और आर्थिक कठिनाई न आवे इसके लिए आपने आर्य समाज सान्ताक्रुज के माध्यम से विद्वत् सेवा निधि के द्वारा लगभग तीस महानुभावों को आजीवन एक हजार रुपये प्रति मास सम्मान राशि के रुप में देने का प्रशंसनीय कार्य प्रारंभ किया है, जो अनुकरणीय है।

अपनी लेखनी और वाणी से जहाँ आप आर्य समाज का प्रचार करते हैं वही आप दैनिक अग्निहात्री भी हैं। इतना ही नही अपितु प्रवचन और यज्ञ के ब्रह्मा के रुप में पूरे वर्ष में जितनी धन राशि प्राप्त होती है उसे आप प्रति वर्ष अपने जन्म स्थान मध्यप्रदेश में वेदपारायण यज्ञ तथा ग्रामीण क्षेत्रों में विद्वानों द्वारा प्रचार करके उसमें व्यय कर देते हैं। अब तक आप अनेक वेद पारायण यज्ञ तथा विशाल वृष्टि यज्ञ कर चुके हैं। आपने अपने पूज्य गुरु पं. युधिष्ठिर मीमांसक की स्मृति में एक लाख रुपये दान करके आर्य समाज सान्ताक्रुझ में स्थिर निधि बनायी है।

आपने अध्यापन कार्य करते हुए पत्राचार पाठ्यक्रम के माध्यम से अनेक स्वाध्याय प्रेमियों तक वैदिक साहित्य पहुँचाने का प्रशंसनीय कार्य किया है। अब तक आपने वेद संदेश, उपनिषद् संदेश, गीता संदेश, ऋग्वेद संदेश आदि ३२ पुस्तकों को सरल और सरस भाषा में लिखकर वैदिक मन्त्रों को घर-घर पहुँचाने का श्लाघनीय कार्य किया है।

आर्य समाज के प्रचार प्रसार में भजनोपदेशकों और पुरोहितों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनका एक संगठन बने, संगठित होकर सुख-दुख में एक-दूसरे का सहयोग करते रहें तथा अपने संगठन के माध्यम से वयोवृद्धों का स्वयं भी सम्मान करते रहें, इस दृष्टी से आपने आर्य भजनोपदेशक परिषद तथा आर्य पुरोहित सभा मुंबई ये दो संस्थाएँ बनायी जिस में आपने स्वयं भी दो लाख रुपये का दान भी किया। इनके अतिरिक्त वैदिक मिशन मुम्बई के माध्यम से आप प्रतिवर्ष वेद सम्मेलन का सफल आयोजन करके मुंबई वासियों को वेद एवं वैदिक मन्तव्यों से अवगत कराते है।

वैदिक धर्म की सेवा का जो संकल्प आपने लिया है उसे आप आजीवन करते रहें, आप पूर्ण स्वस्थ रहें एवं आर्य समाज के प्रचार प्रसार कार्य को करने में और सफल हों। आर्य समाज मुम्बई के समस्त पदाधिकारी तथा सदस्यगण यही परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

निवेदन

देशबन्धु शर्मा	डॉ. वागीश आचार्य	विजय कुमार गौतम
प्रधान	परामर्शदाता	मंत्री

आर्य समाज मुम्बई के अन्य पदाधिकारी अंतरंग सभा के सदस्य एवं आर्य समाज मुम्बई के सभी सदस्यगण।

श्रावण कृ. ७ वि. सम्वत् २०७३ जन्माष्टमी २४-०८-२०१६ ई.

सुपुत्र की प्रशंसा

आचार्य ब. नन्दकिशोर

मनुस्मृति में मनु ने पुत्र के विषय में कहा है-

यस्मिन्नृणं सन्नयति येन चानन्त्यमश्नुते।

स एव धर्म्मज: पुत्र कामजानितरान्विदु:।। - मनु . अ. ९/१०७

जिस पुत्र के उत्पन्न होने से मनुष्य पितृऋण से मुक्त हो जाता है और जिस पुत्र से मनुष्यों को अनन्त सुख मिलता है, वह पुत्र धर्मपुत्र कहाता है और अन्य पुत्र कामजन्य हैं। अस्तु।

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना।

वासितं स्याद्वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा।।

अर्थ- जैसे पुष्पयुक्त और सुगन्धि युक्त एक सुन्दर वृक्ष से सारा वन सुगन्धित हो उठता है वैसे एक ही सुपुत्र से सम्पूर्ण कुल सुशोभित हो जाता है।

लघुचाणक्य में भी कहा है-

एकोऽपि गुणवान् पुत्रो, मा निर्गुणशतं भवेत्।

एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति, न च तारा: सहस्रश:।। - लघुचाणक्य २२९

पुत्र अकेला भी हो, परन्तु गुणवान् होना चाहिए, निर्गुण सैकड़ों की संख्या में भी नहीं होने चाहिए। एक चन्द्र अन्धकार को छिन्न-भिन्न कर देता है, परन्तु हजारों तारे नहीं कर सकते।

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन साधुना।

आह्लादितं कुलं सर्वं यथा चन्द्रेण शर्वरी।।

अर्थ- विद्या से सुभूषित और सज्जन स्वभावाले एक भी सुपुत्र से सारा कुल, परिवार ऐसे आनन्दित हो जाता है जैसे चन्द्रमा के उदित होने से रात्रि प्रकाशित हो जाती है।

चाणक्यनीति में ज्यों का त्यों इस श्लोक का अर्थ मिलता है।

एकेनापि सुपुत्रेण, विद्यायुक्तेन साधुना।

कुलमुज्ज्वलतां याति, चन्द्रेण गगनं यथा।। - लघुचाणक्य ३

विद्वान्, सच्चरित्र एक पुत्र से भी कुल उज्ज्वल हो जाता है। जैसे अकेले चाँद से आकाश शोभायमान हो जाता है।

-चाणक्यसूत्र में भी कहा है कि - चर, सू. ३८७

कुलं प्रख्यापयति पुत्र:।।

सत्पुत्र ही कुल को विख्यात करता है।

वृद्धचाणक्य में भी लिखा है-

शर्वरीदीपकश्चन्द्र:, प्रभाते दीपको रवि:।

त्रैलोक्यदीपको धर्म:, सुपुत्र: कुलदीपक:।। - वृद्धचाणक्य १३८

रात्रि का दीपक चन्द्र है, प्रभात (दिन) का दीपक सूर्य है, त्रिलोकी का दीपक धर्म है और सुपुत्र कुल का दीपक है।

किं जातैर्बहुभि: पुत्रै: शोकसन्तापकारकै:।

चरमेक: कुलालम्बी यत्र विश्राम्यते कुलम्।।

अर्थ- शोक और सन्ताप देनेवाले बहुसंख्यक पुत्रों के होने से क्या लाभ है? उनकी अपेक्षा कुल को स्थिर रखनेवाला एक अकेला पुत्र ही अच्छा है, जिसके कारण कुल स्थिर रहता है। - चा. सू. ३८१

पुत्रे गुणवति कुटुम्बिन: स्वर्ग:।

पुत्र के गुणवान् होने पर कुटुम्ब स्वर्ग बन जाता है। - चा. सू. ३८५

अतिलाभ: पुत्रलाभ:।।

पुत्रलाभ सबसे बड़ा लाभ होता है।

सार्थक पुत्र के लक्षण

जैसा कि शुक्रनीतिसार में कहा गया है-

पित्रोर्निर्देशवर्ती य: स पुत्रोऽन्वर्थनामवान्।

श्रेष्ठ एकस्तु गुणवान् किं शतैरपि निर्गुणै:।। - शुक्र अ. ४/१४

माता-पिता की आज्ञानुसार चलनेवाला पुत्र ही वस्तुत: यथार्थ नामवा (सार्थक) पुत्र कहलाता है और सैकड़ों निर्गुण (मूर्ख) पुत्रों की अपेक्षा एक गुणवान् पुत्र श्रेष्ठ होता है।

एवं-

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतान्यपि।

एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च।। - हि. प्र. १७

एक चन्द्रमा अन्धकार का नाश कर देता है और तारे सब मिलकर भी तम का नाश नहीं कर सकते, अर्थात् गुणी पुत्र एक ही श्रेष्ठ और मूर्ख बहुत भी किसी काम के नहीं।

अज्ञानी, अशिक्षित, मूर्ख पुत्र कुल को दाग लगाता है और बुद्धिमान् पुत्र घर को स्वर्ग बनाता है-

यदि रामा यदि च रमा यदि तनयो विनयधीगुणोपेत:।

यदि तनये तनयोत्पत्ति: सुरवरनगरे किमाधिक्यम्।।

यदि घर में सती-साध्वी स्त्री हो, धन की न्यूनता न हो, पुत्र विनयशील और बुद्धिमान् हो तथा पुत्र का पुत्र भी हो, तो फिर स्वर्ग में भी इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?

प्रदोषे दीपकश्चन्द्र: प्रभाते दीपको रवि:।

त्रैलोक्ये दीपको धर्म: सुपुत्र: कुलदीपक:।।

रात्रि में चन्द्रमा दीपक कहलाता है और प्रभात में सूर्य दीपक कहलाता है, तीनों कालों में धर्म ही दीपक कहलाता है और सुपुत्र कुल का दीपक कहलाता है।

प्रज्ञया वा प्रसारिण्या यो बलेन धनेन वा।

धुरं वहति गोत्रस्य जननी तेन पुत्रिणी।।

अपने श्रेष्ठ विस्तृत बुद्धि द्वारा या यश तथा ज्ञान के द्वारा तथा बल और धन के द्वारा जो पुत्र अपने गोत्र की धुरा का वहम करता है उसी पुत्र के कारण माता पुत्रवाली कहलाती है।

मृष्टं किं सुतवचनं मृष्टतरं किं तदेव सुतवचनम्।

मृष्टान्मृष्टतमं किं श्रुतिपरिपक्वं तदेव सुतवचनम्।।

शुद्ध तथा श्रेष्ठ क्या है? सुत का वचन ही है और शुद्ध से भी बढ़कर शुद्ध श्रेष्ठ क्या है? सुत का वचन है और उससे भी बढ़कर वही सुत का वचन जो कि श्रुति के अनुसार हो मार्जित तथा शुद्ध कहलाता है।

पात्रं न तापयति नैव मलं प्रसूते स्नेहं न संहरति नैव गुणान् क्षिणोति।

द्रव्यावसानसमये चलतां न धत्ते सत्पुत्र एव कुलसद्मनि कोऽपि दिप:।।

अच्छा पुत्र योग्यों को दु:ख नहीं देता न मल को उत्पन्न होने देता है। स्नेह का भी संहार नहीं करता गुणों को भी क्षीण नही होने देता निर्धनता आ पड़ने पर भी चञ्चल नहीं बन जाता है वह सत्पुत्र ही कुल रूपी घर में कोई दीपक है।

अन्धविश्वास के जीवन की समाप्ति

स्वामी श्रद्धानन्द

अविद्यायामन्तरे वर्तमाना: स्वयं धीरा: पण्डितमन्यमाना:।
जघन्याना: परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा: ॥१

जहाँ प्रात: काल गंगास्नान से पहले कुश्ती का फिर प्रारम्भ हो गया था और डलिया झारी लेकर विश्वनाथादि की पूजा-अर्चन करके जलपान करना नित्य कर्म विधि का एक अंग बनाया गया था वहाँ सायंकाल भ्रमण के पीछे मैं रात्रि का ब्यालू करता था। पौष १९३२ के अन्त में एक दिन भ्रमण करने ऐसी ओर गया जहाँ से मेरा निवास स्थान समीप न था। दूर चले जाने से लौटना साढ़े सात बजे हुआ। कुछ आराम करके आठ बजे दर्शनों के लिए चला। विश्वनाथ का मन्दिर एक ही गली में है जिसके दोनों ओर पुलिस का पहरा था। मैं विश्वनाथ की ओर से फाटक पर पहुँचा तो पहरेवालों ने मुझे रोक दिया। पूछने पर पता लगा कि रीवाँ की रानी दर्शन कर रही हैं, उनके चले जाने पर द्वार खुलेगा । मुझे कुछ खिसियाना-सा देख पुलिसमैन ने, जो मेरे पिता की अर्दली में रह चुका था, मोढ़ा बैठने को रख दिया। मैं एक पल को बैठ तो गया परन्तु विचार कुछ उलट गये। इस रुकावट से मेरे दिल पर ऐसी ठेस लगी जिसका वर्णन लेखनी नहीं कर सकती। जी घबरा गया और मैं उठा और उलटा चल दिया। पहरेवाले ने बहुत पुकारा परन्तु मैंने घर आकर ही दम लिया। आहट पाहट पाकर भृत्य भोजन लाया तो क्या देखता है कि मैं कपड़े पहिरे ही बिस्तरे पर लेट रहा हूँ। कह दिया कि भोजन नहीं करूँगा। नौकर मेरे आग्रह करने पर स्वयं खाना खाकर सो गया।

मुझे वह रात जागते बीती। मन की विचित्र व्याकुल दशा थी। प्रश्न पर प्रश्न उठते थे- क्या सचमुच वह जगत् स्वामी का दरबार है जिससे एक रानी उसके भक्तों को रोक सकती है? क्या यह मूर्ति विश्वनाथ हो सकती है या वे देवता कहला सकते हैं जिनके अन्दर ऐसा पक्षपात हो? परन्तु मूर्ति को देवता किसने बनाया? नित्य मेरे सामने संगतराश ही तो मूर्तियाँ बनाते है...'' कभी व्याकुल होकर दस-बीस मिनट टहलता, फिर बैठ जाता। फिर दूसरी ओर प्रश्नावली की लहर पर लहर उठती- ''जब सांसारिक व्यवहारों में पक्षपात है तो देवताओं के दरबार में उसका दखल क्यों न हो। क्या मनुष्यों ने भी पक्षपात देवताओं से ही सीखा? क्या मेरे स्वच्छन्द जीवन ने तो मुझे अविश्वासी नहीं बना दिया?'' गोस्वामी तुलसीदास के दोहे और चौपाइयाँ याद आने लगीं। जब नीचे लिखे दोहे का स्मरण हुआ तो अश्रुधारा बह निकली-

बार-बार वर माँगहूँ, हर्ष देहु सिय रंग।
पद सरोज अनपायनी, भक्ति सदा सतसंग।।

एक घण्टे तक आँसुओं का तार बँधा रहा, अपने इष्टदेव महावीर से प्रकाश के लिए प्रार्थना की। परन्तु उस समय बालयति के ध्यान से भी कुछ न हुआ। अन्त में रोना-धोना बन्द हुआ और प्राचीन यूनान रोम की मूर्तिपूजा के इतिहास षर मानसिक दृष्टि दौड़ गई। पहले जो लेख मूर्तिपूजा मे रुचि दिलाते थे, उस पर नया प्रकाश पड़ने लगा। हिन्दू मूर्तिपूजा के विरुद्ध ईसाइयों की जो दलीलें पढ़ी थी उन्होंने मुझे हिन्दू देवमाला से बेगाना बना दिया और आधी रात पीछे यह निश्चय करके सो गया कि अपने प्रिंसिपल पादरी ल्यूपोल्ट से संशय निवृत्त करूँगा।

दूसरे दिन पादरी ल्यूपोल्ट को मैंने जा घेरा। वह बहुत प्रसन्न हुए और मुझे अपनी कलीसिया में लाने के लिए बहुत मगजपच्ची की। मेरे तीन दिनों के प्रश्नों से ही पादरी साहब घबरा गये और मुझे Hopeless Case (निराशाजनक मामला) समझकर उन्होंने छोड़ दिया। नास्तिकपन से मेरा चित्त अभी तक घबराता था। मुझसे अंग्रेजी पढ़ने बनारस संस्कृत कालेज के एक विद्यार्थी आया करते थे। वह दर्शनों का अभ्यास करते और योग्य विद्वान् थे। अंग्रेजी इसलिए पढ़ते थे कि उसके कारण उसकी छात्रवृत्ति तिगुना हो सकती थी। इन्होंने मुझे लघु कौमुदी पढ़ानी आरम्भ कर दी। व्याकरण में भी इनकी अच्छी गति थी। उनसे भी एक दिन स्वभावत: बातचीत हुई। उनकी युक्तियों ने मुझे शान्त तो न किया, उल्टी संस्कृत से ही मुझे घृणा हो गयी। मैंने पण्डित विद्याधर से कह दिया कि संस्कृत में कोई अक्ल की बात ही नहीं और इसलिए अब मैं कौमुदी न पढूँगा। परन्तु पण्डित जी मुझसे सरेस की तरह चिपक गये और थोड़ा बहुत व्याकरण का बोध करा के ही मुझे छोड़ा अस्तु!

यह तो आगे की बात है। सारांश यह कि हिन्दू मूर्तिपूजा से मुझे घृणा हो गई, प्रोटेस्टेण्ट ईसाइयों की दलीलें पोच मालूम हुई, हिन्दू शास्त्रज्ञ मेरी शान्ति न कर सके, इसलिए कुस्ती और गंगास्नान का नियम स्थिर रखते हुए भी दर्श स्पर्श से मुक्ति मिल गई। परन्तु अश्रद्धा की ओर सर्वथा जाने में झिझक बाकी थी।

एक दिन सिकरौर छावनी की ओर घूमने जाते हुए एक रोमन कैथोलिक पादरी मिल गये। बातचीत करते हुए उन्हें प्रोटेस्टेण्ट पादरी ल्यूपोल्ट की अपेक्षा अधिक विनयशील, शांत और सहिष्णु पाया। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि यदि ख्रीष्टीय मत का तत्त्व जानना हो तो कैथोलिक कलीसिया के सिद्धान्तों को समझना चाहिए। उनके चर्च में मेरा आना-जाना शुरू हुआ। उनकी धार्मिकसंस्थाओं तथा प्रार्थनासभाओं का मुझ पर विशेष प्रभाव पड़ा। मेरे श्रद्धासम्पन्न चित्त पर फादर लीफ के आचार व्यवहार का भी असर हुआ। मैं यहाँ तक उन पर मोहित हुआ कि रोमन कैथोलिक विधि से बसिस्मा लेने को तैयार हो गया। मेरे एक ही मित्र को मेरे निश्चय का पता था परन्तु उन्होंने मुझे रोकने की कोशिश ही न की। फाल्गुन १९३२ संवत् में यहाँ तक नौबत पहुँची कि बप्तिस्मा लेने की तिथि नियत करने के लिए मैं एक शाम को फादर लीफ की ओर गया। स्वाध्याय के कमरे में वह थे नहीं, मैंने अन्दर के कमरे का पर्दा उठाया। पादरी साहब तो वहाँ थे नहीं परन्तु एक दूसरे पादरी और एक ब्रह्मचर्यवस्त्रधारिणी (Nun) को ऐसी घृणित दशा में पाया कि मैं उल्टे पांव लौट गया और फिर उधर जाने का नाम न लिया।

मुसलमानी मत की ओर से पहले की उदासीन था क्योंकि पिताजी से जो उन लोगों के मुकद्दमे हुए उनमें उनके आचार व्यवहार कुछ उच्च न देखे गये। मुझे माला और तस्बीह दोनों से ही और 'ईसाई तस्वीह' (Rosary) तीनों से ही घृणा हो गई और कबीर भक्त का गीत कण्ठ हो गया जिसे मैं स्वर सहित गाया करता-

आउँगा न जाउँगा, मरूँगा न जीउँगा।
गुरु के सबद प्याला, हरि-रस पीउँगा ॥
कोई जावे मक्के लै कोई जावे कासी।
देखो रे लोगो दोहूँ गल-फांसी।।
कोई फेरे माला लै कोई फेरे तसबी ।
देखो रे लोगो ये दोनों ही कसबी ॥
यह पूजें मढ़ियाँ लै यह पूजें गौराँ।
देखो रे लोगो ये लुट गई चाराँ ॥
कहत कबीर सुनो री लोई।
हम नाहिं किसी के हमरा न कोई।।

मजहब सम्प्रदाय था Religion से मेरा विश्वास उठ गया। मेरा मत यह हुआ कि मजहब एक ढकोसला है जो चालाक बुद्धिमानों ने आँख के अन्धों और गाँठ के पूरों को फाँसने के लिए गढ़ छोड़ा है। मैं अपने आपको पक्का नास्तिक समझकर अपने स्वभाव के अनुसार उस पर भी वेग से बह निकला।

पूजा, दर्शन का अंकुश दूर हो चुका था, अब श्रद्धाहीन होने के कारण गंगा-स्नान पर क्यों निष्ठा रहनी चाहिए थी परन्तु नही, जो स्वभाव बन चुका था उसका प्रभाव कैसे दूर होता? प्रातःकाल का उठना, कसरत, कुश्ती और गंगा-स्नान बराबर जारी रहे।

विचार शक्ति का चमत्कार (कारण शरीर क्या है?)

जीवात्मा के साथ सूक्ष्म शरीर साथ जाता है। इस सूक्ष्म शरीर में कर्मो के फल के रुप में संस्कार व कारण शरीर के रुप में विचार शक्ति विद्यमान रहती है। जो शक्तियाँ कर्म में परिवर्तित न हुई हों और जो संस्कार फल में परिवर्तित न हुए हो वे सूक्ष्म शरीर के साथ जाते हैं।

हमारा अहम् तत्व मन और बुद्धि द्वारा विचारो के बीज का चित्त में निरोपण करता है। हमारे विचार हमेशा अज्ञात भय से ग्रसित रहता है कि जो मै कर्म कर रहा हूँ उसका फल मुझे मिलेगा कि नहीं, जो फल मुझे प्राप्त है वह स्थिर रहेगा कि नहीं। इससे तब ही मुक्ति मिलेगी जब विचारो में स्थिरता रहेंगी, फल मे स्थिरता रहेगी और फल मे बढ़ोतरी के बारे में हम सदा सोचते रहेगे विनम्रत्व, पूर्ण समर्पण, धीरज, सहनसीलता, एवं अपने आप से वफादार रहना व अलगाव, फल में व कर्म में, यही कारण शरीर का मूल आधार है। हमारे विचार बिना भटकाव के पूर्ण स्वीकारता के साथ होने चाहिए याने पूर्ण विश्वास के साथ हमारी सोच होनी चाहिए क्योकि यदि हमारे विचारों में ही विश्वास न हो तो भटकाव की स्थिति हमेशा बनी रहेगी।

उपर्लिखित से यही साबित होता है कि यही कारण शरीर है, यही तत्वज्ञान है, यही आत्म दर्शन है, यही अपने आप से वफादार रहना और अपनी योग्यता बढ़ाना है।

विषय अत्यन्त गूढ़ है। अगले अंक में अन्य उदाहरणो के साथ इसका विस्तार करेंगे। धन्यवाद !

राजकुमार भगवतीप्रसाद गुप्त

पं. गणेशप्रसाद शर्मा

डॉ. भवानीलाल भारतीय

स्वामी जी का रंग गोरा था, शरीर सुडौल और भरा हुआ था, वार्तालाप में नम्रता थी। वे अपने ज्ञान से जो कुछ कहते थे उसमें सत्य की मात्रा का उल्लंघन न होने का बहुत ध्यान रखते थे। व्यर्थ बात कहने का उनके पास समय न था। उनकी वाणी चंचलता रहित, गम्भीर थी, मनोभाव शुद्ध व अटल थे। मायिकता से किसी के पक्ष को गिराना या लाग-लपेट से धींगा-धींगी करने की गन्ध ने भी उनको स्पर्श नहीं किया था। स्वामी जी शान्तिप्रिय थे, उनके पास जाकर मनुष्य को शान्ति मिलती थी। मूर्ति सौम्य कृपामयी झलकती थी पर शास्त्रार्थ में एक अद्भुत तेज उनके मुखमण्डल पर दमकता था। विपक्षी का हृदय उनके धाराप्रवाह वक्तृत्व से दहलने लगता था। जो कुछ उच्चारण करते मानो अभी रटकर लाये हों, जिस प्रकार परिश्रमी शिष्य अपने गुरु को निर्भीक पाठ सुनाता है। हम ने कोई नोट व्याख्यान के समय उनके पास नहीं देखा। एक लंगोटी और तहमद अथवा कभी-कभी उपर्ने के सिवाय, (उसे भी उतार देते थे) अन्य वस्त्रों की आवश्यकता न थी। आरम्भ में वे **'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः'** इस मन्त्र को पढ़ कर ईश्वर की स्तुति करते थे। उस समय उनके चन्द्रानन पर शान्ति विराजती थी। समस्त सभाभवन-शान्तमूर्ति बन जाता था। उनका मुखारविन्द मुनिमन- रञ्जन जैसा परम मनोहर लगता था। किन्तु विपक्षियों की आभा मन्द पड़ जाती थी। उनके हृदय की गति बढ़ जाती थी।

पं. गणेशप्रसाद शर्मा प्राय: स्वामी जी के समीप जाकर कुछ लिखने का काम किया करते थे। इसी प्रसंग मे उन्होंने लिखा-

एक दिन सामाजिक काम करते हुए मुझे स्वामी जी के पास रात के नौ बज गये। उस समय श्री महाराज ने दयार्द्र हृदय से पूछा कि तुम भोजन करके नहीं आये। काम पूरा करके जाने को कहते हो, इसलिये कुछ फल व मिठाई खाकर काम करो। इस पर मैंने कहा, आप परोपकारी महात्मा हैं अत: आपकी सेवा करना हम गृहस्थों का धर्म है न कि इसके विरूद्ध आपके खाद्य द्रव्य को ग्रहण करना । मेरे इस कथन पर महाराज बोले-इस खाद्य सामग्री में मेरा अपना क्या है? सब तुम गृहस्थ लोगों के घर से आई है। सम्प्रति भोज्य पदाथ मेरी आवश्यकता से अधिक हैं। इस कारण तुम को कुछ संकोच नहीं करना चाहिए। पर्ण-कुटियों में बैठे हुए वनस्थ साधुओं का श्रीरामचन्द्रादिकों ने भी अपने बनवास में स्वागत स्वीकार किया था। उनके दिये कन्दमूल फलादि को राज्यश्री प्राप्त राजे तक ग्रहण करते थे, अत: सोच विचार का स्थान नहीं। उक्त प्रकार कह ब्रह्मचारी रामानन्द को आज्ञा दी कि आम, खरबूजा और बर्फी लाओ। स्वामी जी मुझे खिला कर बहुत प्रसन्न हुए।

इसी प्रकार मेरठ से एक अग्रवाल सज्जन ठीक ऐसे समय आये जब स्वामी जी भोजन करने जा रहे थे। उस समय रसोईघर की राह छोड़ दी औ जब तक प्रागुक्त (पूर्व कथित) महाराज को जिमा नहीं दिया तब तक स्वयं भोजन नहीं किया और अतिकाल हो जाने पर भी कुछ चिन्ता नहीं की।

आगरे में जब स्वामी जी ने मुन्शी बख्तावरसिंह के मामले के विचार के लिए फर्रूखाबाद वालों को बुलाया उस काल मुन्शी नारायणदास तथा मेरा भी जाना हुआ था। वहां देखा गया कि जब हम लोगों का भोजन बन जाता था तो स्वामी जी स्वयं सौच का पानी और घी बडे प्रेम से लाते थे और पूछते थे कि ''और किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो निस्संकोच कहो।'' ऐसा कहने के पीछे खुद जीमने जाया करते थे।

- फर्रूखाबाद का इतिहास (१९३१ ई.)

जीवन के चार गुण

आचार्य प्रियव्रत

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा
शास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेळमानो वरुणेह बोध्यु
रुशंस मा न आयुः प्र मोषीः॥११॥

अर्थ- हे देव! मैं **(त्वा)** तुमसे **(तत्)** उस व्रतपालन को **(यामि)** माँगता हूँ **(ब्रह्मणा)** वेद के द्वारा **(वन्दमानः)** वन्दना करता हुआ **(अहेळमानः)** किसी से क्रोध न करता हुआ **(यजमानः)** यह यजमान मेरा आत्मा **(हविर्भिः)** हवियों द्वारा **(तत्)** उस व्रतपालन को आपसे **(आशास्ते)** माँगता है **(वरूण)** हे वरणीय देव ! **(इह)** इस अवस्था में **(बोधि)** मेरी प्रार्थना को जानिए, सुनिए **(उरुशंस)** हे बड़े-बड़ों द्वारा प्रसंसित देव! **(नः)** हमारी **(आयुः)** आयु को **(मा)** मत **(प्रमोषीः)** छीनिए।

पीछे नवम मन्त्र में कहा गया था कि भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिए जीवन निष्पाप होना चाहिए। दशम मन्त्र में भगवान् के अदब्ध व्रतों की ओर संकेत करते हुए यह निर्देश किया गया था कि प्रभु के निर्धारित नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करने से ही वह पवित्र हो सकता है। प्रस्तुत मन्त्र में उसी नियम-पालन के जीवन की भगवान् से विशेषरूप में प्रार्थना की गई है और उसी प्रार्थना के प्रसङ्ग में यह भी बता दिया गया है कि हमारा जीवन भगवान् के निर्धारित नियमों के अनुसार किस प्रकार बीत सकता है।

मन्त्र का उपासक अपने भगवान् से कह रहा है कि हे भगवन्! मैंने देख लिया है कि आपके पास जो हमारे क्लेशों को काटनेवाली सैकड़ों और हज़ारों ओषधियाँ हैं, आप जो हमारे ऊपर असंख्य मङ्गलों की वर्षा करने की शक्ति रखते हैं, उन्हें प्राप्त करने के लिए हमारे जीवनों का पापरहित होना आवश्यक है और इसके लिए आपके बनाये वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के नियमों का पालन करना आवश्यक है तो हे भगवन्! मैं आपसे आपके उन नियमों के पालन की शक्ति की ही प्रार्थना करता हूँ। मैं आपकी कृपा से आपके इन सब नियमों का भली-भाँति पालन कर सकूँ।

उपासक कहता है कि हे भगवन्! मैं आपसे 'तत्' अर्थात् उस नियम-पालन की ही याचना करता हूँ, परन्तु आपसे नियम-पालन के जीवन की प्रार्थना करनेवाला मैं याचक ऐसा-वैसा याचक नहीं हूँ। मेरे याचना करने के प्रकार को भी आप देख लीजिए। मैं ''ब्रह्म'' द्वारा ''वन्दमान'' हो चुका हूँ, ''अहेळमान'' हो चुका हूँ और ''यजमान'' हो चुका हूँ और ''हवियों'' का दान करनेवाला हो चुका हूँ। इस प्रकार ब्रह्म के द्वारा वन्दमान, अहेळमान और यजमान होकर हवियों के दान के जीवन द्वारा मैं आपसे नियम-पालन के जीवन की याचना करता हूँ। उपासक के इस कथन का रहस्य समझ लेना, चाहिए। ''ब्रह्म'' वेद- विद्या को कहते है। ''वन्दमान'' कहते है वन्दना करनेवालो को, उपासना करनेवाले को। उपासक कहता है कि मैं वेद के द्वारा वन्दमान बन चुका हूँ। वेद में उपासना करने का, भगवान् की सेवा में पहुँचकर उन्हें रिझाने का जो प्रकार बताया गया है वह मैंने जान लिया है। अपने और परमात्मा के स्वरूप को पहचानकर मैं वेद में कहे अनुसार नित्य परमात्मा की उपासना किया करता हूँ। मैं भगवान् का भक्त बन गया हूँ। मेरी लौ सदा भगवान् में लगी रहती हैं। मैं भगवान् के प्रेम में रत रहता हूँ। भगवान् में विश्वास रखनेवाला पूर्ण आस्तिक बन चुका हूँ। इसके साथ ही मैं वेद के द्वारा ''अहेळमान'' भी बन चुका हूँ। ''अहेळमान'' का शब्दार्थ होता है क्रोध न करनेवाला। उपासक कहता है कि वेद में जीवन को क्रोधरहित बनाने के लिए जो उपदेश दिये गये हैं, मैंने उनका पूर्ण रीति से मनन और पालन किया है। इसके परिणामस्वरूप मेरा जीवन क्रोधरहित हो गया है।

मैं जो क्रोध में भरकर दूसरे प्राणियों को कटु शब्दों का प्रयोग करके और क्रोध के अधिक आवेश में अन्य उपायों द्वारा हानि पहुँचाकर कष्ट दिया करता था, वह मैंने अब छोड़ दिया है। अब मैं क्रोध को त्यागकर अहिंसाव्रत का व्रती बन गया हूँ। अब मैं किसी प्रकार की छोटी-बड़ी उत्तेजना से उत्तेजित होकर क्रोध में भरकर किसी को कोई कष्ट देने के लिए, किसी का किसी प्रकार का अनिष्ट करने के लिए, उद्यत नहीं हूँ। मेरे हृदय में अब क्रोध का स्थान प्रेम और शान्ति ने ले-लिया है। वेद के अध्ययन से मुझमें एक और परिवर्तन आ गया है। मैं वेद के स्वाध्याय द्वारा ''यजमान'' बन गया हूँ। ''यजमान'' कहते हैं यज्ञ करनेवाले को। उपासक कहता है कि वेद में जीवन को यज्ञमय बनाने का जो उपदेश है, उसका मैंने ग्रहण किया है। उसके ग्रहण से मेरा जीवन अब यज्ञ का जीवन हो गया है। ''यज्ञ'' का शब्दार्थ होता है देवपूजा, संगतीकरण और दान। उपासक कहता है वेद के द्वारा मेरा जीवन यज्ञमय होकर देवपूजा, संगतीकरण और दान का जीवन बन गया है। मैं अब देवों की पूजा करता हूँ। देवाधिदेव परमात्मा की पूजा तो मैं नित्य करता ही हूँ, क्योंकि मैं ''वन्दमान'' बन चुका हूँ। इसके अतिरिक्त विद्वान् पुरुषों की और अनुभव के धनी बड़े-बूढ़ों के रूप में जो अन्य देव हैं, उनकी भी पूजा मैं नित्य करता हूँ। मैं उनका प्रतिदिन यथोचित आदर-सत्कार करता हूँ। मेरे जीवन में अब संगतीकरण होता है। मैं योग्य पुरुषों के साथ विशेष कर ''देव'' पुरुषों के साथ अपने जीवन को सङ्गत करता हूँ- उनकी सङ्गति में बैठता हूँ। उनकी संगति में बैठकर उनसे भाँति-भाँति के गुणों को सीखता हूँ। अग्नि, वायु, जल, पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, विद्युत् आदि जो जड़देव हैं, मैं उनके साथ भी अपने आपको सङ्गत करता हूँ। उनकी सङ्गति में बैठकर मैं उनकी रचचना, उनके नियमों, उनके कार्यों और कारणों के विषय में ज्ञान प्राप्त करता हूँ। उन विषयक भाँति-भाँति की विद्याओं की शिक्षा प्राप्त करता हूँ। मेरा जीवन अब दान का जीवन हो गया है। देवों की पूजा और देवों के साथ सङ्गति करने से मुझे जो कुछ प्राप्त होता है, मुझे जो लाभ होता है, मुझे जो शक्ति मिलती है, उसका मैं दान करता रहता हूँ। मेरे पास जो कुछ होता है, उसे मैं औरों को बाँटता रहता हूँ। मेरा जीवन अब दान का, उपकार का, दूसरों को अपना अङ्ग समझकर अपने पदार्थ उनको देते रहने का जीवन हो गया है। यजमान शब्द में छिपे हुए 'दान' अर्थ से जो भाव निकल रहा था उसी को प्रकारान्तर से और स्पष्ट करके उपासक कहता है कि वेद के द्वारा मेरा जीवन 'हवि' का जीवन हो गया है। में अब जीवन द्वारा हवियाँ देता रहता हूँ। हम जब अपने पदार्थों को दूसरों के निमिट त्यागते हैं, दान करते हैं,

तब उन पदार्थों को 'हवि' कहा जाता है, इसलिए यज्ञ में मन्त्रों द्वारा आहुति देकर अग्नि में छोड़े हुए पदार्थ को 'हवि' कहते हैं। यज्ञाग्नि में दी गई आहुति आत्मत्याग की भावना का चिह्नरूप होती है। सारे ही यज्ञ यजमान के हृदय में विशेष भावनाओं को जगाने के लिए चिह्नरूप होते हैं। उपासक कहता है कि मेरा जीवन 'हवि' का जीवन हो गया है। मैं अपने पदार्थों को, अपनी सब प्रकार की शक्तियों को, 'हवि' बना-बनाकर लोकोपकार के लिए दान करता रहता हूँ। यज्ञाग्नि में दी गई 'हवियों' में जो आत्मत्याग की भावना निहित है, वह अब मेरे भीतर आ चुकी है। मेरा जीवन अब पूर्ण आत्मत्याग का, पूर्ण बलिदान का जीवन बन चुका है। मेरा अब कोई कार्य अपने तुच्छ स्वार्थ के निमित्त नहीं होता। अब स्वार्थ का स्थान मेरे जीवन में परार्थ ने ले-लिया है। अब जो कुछ मैं करता हूँ वह सब लोक-कल्याण की भावना से करता हूँ। मेरे जीवन में अब जो कार्य स्वार्थ के लिए भी हो रहे दीखते हैं, वे भी इसलिए हो रहे होते हैं कि मैं उनके द्वारा शक्ति पाकर लोकोपकार के कार्य और अधिक कर सकूँ। अब तो मेरे जीवन में 'हवि' ही 'हवि'-'त्याग' ही 'त्याग'- रह गया है।

हे भगवन्! मैं वेद के द्वारा अपना जीवन ऐसा वन्दमान, अहेळमान, यजमान और 'हवियों' का दान करनेवाला बनाकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। ऐसा बनकर मैं आपके द्वारा निर्धारित जीवन के वैयक्तिक और सामाजिक नियमों के पालन की शक्ति की प्रार्थना करने आया हूँ। अब तो आप मेरी सहायता कीजिए।

पाठक देखेंगे कि मन्त्र के उपासक ने अपना वर्णन करते हुए भगवान् से नियम-पालन की जो जीवन में सहायता की कृपा करने की प्रार्थना की है उसके द्वारा वेद ने कैसी अद्भुत कवितामयीशैली में यह बता दिया है कि किस प्रकार के लोग भगवान् के निर्धारित नियमों का पालन कर सकते हैं। जो लोग परमात्मा के विश्वास और उसकी उपासना का अस्तिक जीवन व्यतीत करते हैं, जिन्होंने हृदय के क्रोध आदि विकारों को जीतकर उनके स्थान में प्रेम, अहिंसा, शान्ति आदि भावों को दृढ़ कर लिया है, जो देवपुरुषों का आदर और सत्कार करते हैं, जो ज्ञानी देवों और जड़देवों की सङ्गति में जाकर विविध प्रकार के ज्ञान-विज्ञान को उपलब्ध करते हैं और अन्त में जो अपनी सब उपलब्ध सामग्री को लोकोपकार के लिए खर्च कर डालने की वृत्ति को आत्मा में जगा लेते हैं, वे लोग ही प्रभु के नियमों का भलीभांती पालन कर सकते हैं और उन्हीं को नियम-पालन में भगवान् की ओर से सहायता मिलती है। जो लोग इस प्रकार का यज्ञमय नहीं बनाते उनके हृदय में रहनेवाली काम, क्रोध, लोभ, मोह, स्वार्थ आदि की राजस् और तामस् वृत्तियाँ उनके जीवन को इस प्रकार का बना देंगी कि उनसे भगवान् के द्वारा निर्धारित वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के नियमों का पालन नहीं हो सकेगा। नियमित जीवन में त्याग करना होता है। ऐसे लोग त्याग नहीं कर सकते और ऐसे लोगों की कोरी शाब्दिक प्रार्थना से भगवान् उन्हें कोई सहायता नहीं देने लगे। क्रियाशील, प्रयत्नवान् पुरुष को ही भगवान् की सहायता प्राप्त होती है। सन्मार्ग के अविश्रान्त पथिक पर ही भगवान् अपनी कृपा की वर्षा किया करते हैं।

मन्त्र के अन्तिम चरण में उपासक भगवान् से कह रहा है कि हे देव! मैं अमुक-अमुक गुणोंवाला बनकर आपकी सेवा में प्रार्थना करने आया हूँ, इस अवस्था में तो आप मेरी प्रार्थना को सुनिए और मेरी प्रार्थना को सुनकर मेरी आयु का प्रमोष मत कीजिए- उसे मुझसे मत छीनिए। उपासक की इस उक्ति का भाव भी हृदयङ्गम कर लेना चाहिए। पाठक देख रहे हैं कि मन्त्र में नियम-पालन के जीवन की प्रार्थना की जा रही है। प्रार्थना के प्रसङ्ग में ही उपासक के विशेषणों द्वारा यह भी निर्दिष किया गया है कि किस प्रकार के लोग भगवान् के निर्धारित नियमों का पालन कर सकते हैं। इस प्रकार मन्त्र में भगवान् के बनाये हुए नियमों के पालन के जीवन की महिमा का वर्णन हो रहा है। इस प्रसङ्ग में मन्त्र के अन्तिम चरण द्वारा की जा रही प्रार्थना का आशय स्वयं स्पष्ट हो जाता है। जिस जीवन में नियमों का पालन है, वही वास्तव में जीवन है। जो व्यक्ति अपनी आयु नियम-पालन के जीवन में लगा पाता है, उसी की आयु वास्तव में सफल है। वास्तव में तो आयु उसी को मिली है, क्योंकि उसने अपनी आयु का वास्तविक सदुपयोग किया है। जिसने अपनी आयु प्रभु द्वारा निर्धारित नियमों के पालन में नहीं लगाई है उसकी आयु व्यर्थ गई है। उसकी आयु मानो उससे छिन गई है, क्योंकि उसको आयु का वास्तविक सदुपयोग नहीं प्राप्त हो सका है। आयु का उद्देश्यहीन होकर व्यर्थ जाना उसका छिन जाना ही है, फिर भगवान् ने यह मनुष्य का जीवन हमें इसीलिए प्रदान किया है कि इसके द्वारा हम जीवन का परम पुरुषार्थ-इस लोक और मोक्ष दोनों का सुख प्राप्त कर सकें। वह पुरुषार्थ प्राप्त होता है जीवन में प्रभु के नियमों का पालन करने से। जो मनुष्य-जीवन पाकर भी प्रभु के कल्याण-कारी नियमों का पालन नहीं करता, प्रत्युत उन्हें तोड़ता रहता है, उसे भगवान् फिर किसी और योनि में भेज देते हैं और इस प्रकार मनुष्य का जीवन उससे छीन लेते हैं। उपासक कह रहा है कि हे प्रभो! आप मेरी प्रार्थना को सुनिए। मुझे नियम-पालन के जीवन में सहायता दीजिए, जिससे मेरा यह मनुष्य-जीवन सफल हो सके, मेरा यह मनुष्य-जीवन मुझसे छिन न सके। जब मैं मृत्यु को प्राप्त करूँ तब उसके अनन्तर मोक्ष नहीं तो मनुष्य-जीवन को तो आपकी कृपा से फिर भी अवश्य प्राप्त कर सकूँ। आप मेरे दुष्कर्मों से पूर्ण, नियमहीन जीवन से अप्रसन्न होकर मेरी मनुष्य-योनि को मुझसे न छीनें।

मन्त्र में वरुणदेव का- वरणीय भगवान् का-एक विशेषण ''उरूशंस'' आया है। ''उरुशंस'' का अर्थ होता है जो बड़े-बूढ़ों द्वारा प्रशंसित हो। भगवान् ''उरुशंस'' हैं। बड़े-बडे विचारशील आचार्य, ऋषि, मुनि और तत्त्ववेत्ता लोग भगवान् की महिमा के गीत गाते हैं और उसके गीत गाते हुए थकते नहीं हैं। ''उरुशंस'' का अर्थ महान् स्तुतिवाला भी होता है। भगवान् में अनन्त गुण हैं, इसलिए उनकी अनन्त-स्तुति हो सकती है। ''उरुशंस'' का अर्थ महान् शंस, अर्थात् उपदेशवाला भी हो सकता है। भगवान् ने सृष्टि के आरम्भ में वेद द्वारा महान् उपदेश दिया है। इस समय भी वे भक्तजनों के हृदयो में प्रकाश देते रहते हैं। इस प्रकाश महान् उपदेष्टा होने से भी भगवान् ''उरूशंस'' हैं। ऐसे भगवान् ही हमें नियम-पालन के जीवन में सहायता दे सकते हैं।

हे मेरे आत्मन्! तू भी ब्रह्म का पारायण किया कर-वेद का अध्ययन किया कर। तेरा जीवन भी वन्दमान, अहेळमान, यजमान और हविर्दान का जीवन हो जाएगा। तदनन्तर तेरे लिए प्रभु के नियमों का पालन सुगम हो जाएगा। उसके परिणामस्वरूप भगवान् की कृपा तुझपर बरसने लगेगी।

क्रोध (Anger)

डॉ. देव शर्मा

बच्चो! क्रोध से बचो! क्रोध आपके लिये बहुत बड़ा शत्रु है। क्या आप यह जानना नहीं चाहेंगे कि क्रोध किसे कहते हैं? और क्रोध क्यों आता है? क्रोध एक ऐसा रासायनिक परिवर्तन है, जो शरीर में स्वाभाविक रूप से चलने वाली प्रक्रिया को, गति को रोककर उसको उल्टा चलने पर मजबूर कर देता है। जहाँ भोजन के द्वारा शुद्ध रक्त बनना चाहिए। वहाँ विष मिला हुआ रक्त बनना शुरू हो जाता है, जो हमें पढ़ने में, याद करने में, बोलने में, सोचने में हमारी मदद करते हैं; क्रोध आते ही उनमें से बहुत सारे अवयव मर जाते हैं, और कोशिकाएं सिकुड़ जाती हैं, माइन्ड की बहुत सारी शक्ति नष्ट हो जाती है। इसी को कहते हैं- क्रोध।

जब यह रासायनिक परिवर्तन शरीर में होता है, तो शरीर में इतना विष पैदा हो जाता है। यदि उसे इन्जेक्शन से निकाल लिया जाए और एक हजार व्यक्तियों को दे दिया जाये तो सब मर जायेंगे।

क्रोध क्यों आता है?

बच्चो! क्रोध क्यों आता है- क्रोध के कई कारण हैं जो विचारने पर ही समझ में आते हैं। इसलिए आओ विचार करें-

- जब आप चाहते हो कि यह चीज तुम्हें मिल जाये, जब वो नहीं मिलती तो तब क्या होता है? क्रोध आता है।
- जब आप चाहते हैं कि सब मेरी तरह से काम करें। और यदि कोई ऐसा न करे तो क्या होता है? निश्चित ही क्रोध आता है।
- जब आपसे कोई काम ना सुलझ पाये और आप उसमें पूरी तरह से उलझ जायें, तब भी क्रोध आता है।
- जब आपकी कोई निंदा करे, आपमें दोष निकाले, आपकी गलतियाँ बताये, तब भी क्रोध आता है।
- जब आपको कोई शारीरिक परेशानी हो या आप शरीर से कमजोर हो, तब भी क्रोध आता है।
- जब कोई प्रतियोगी आपसे आगे निकल जाये और आप पीछे रह जायें, तब भी आपको क्रोध आता है।

अब आप अच्छी तरह जान गये होंगे कि क्रोध क्यों आता है? पर क्या ऐसा होना आपके लिए ठीक है?

क्रोध से क्या मिलता है?

क्रोध कहता है कि- मैं जिसके पास जाता हूँ,

- उसे बहरा कर देता हूँ।
- उसे गूँगा कर देता हूँ।
- उसे अँधा कर देता हूँ।
- बहादुर को कायर बना देता हूँ।
- चेतन को जड़ बना देता हूँ।
- किसी के किये हुए को नहीं देखने देता हूँ, हित की बात भी नहीं सुनने देता हूँ।
- अपने गुरुजनों की और यहाँ तक कि अपने माता-पिता की हत्या भी करवा देता हूँ।
- सब कुछ नष्ट करवा देता हूँ।

इसलिए तो मुझे क्रोध कहते हैं। समझे बच्चो ! आपके बिना बुलाये आ जाता हूँ मैं क्रोध।

क्रोध से कैसे बचें?

मानसिक बचाव

जिन-जिन कारणों से क्रोध आता है, उन-उन पर विचार करें कि क्या यह ठीक है?

- जिस चीज के लिये आप जिद करते हैं, उस पर सोचें कि क्या वह चीज बहुत जरूरी है?
- जिसके बिना आपका काम चल सकता है, या आपके लिये जरूरी नहीं है, उसकी उपयोगिता भी नहीं है। आप बेकार ही उसके लिए जिद करते हो।
- जो-जो आपके लिये जरूरी है, वह-वह तो आपके माता-पिता आपको दिलवा ही देते हैं।

आपको क्या चाहिए? यदि आप टॉफी, चॉकलेट, कोल्ड ड्रिंक्स, बर्गर, पिज्जा, आईसक्रीम आदि चाहते हैं और न मिलने पर क्रोध करते हैं, तो यह आपकी माँगें हैं, जो आपको नहीं करनी चाहिएं।

आप चाहते हैं- माता-पिता आपके अनुसार चलें तो यह भी ठीक नहीं। जितना आप सोचेंगे, विचार करेंगे, उतना ही क्रोध से अपने आप बचते चले जायेंगे।

शारीरिक बचाव

- क्रोध के समय ठंडा पानी पीएं।
- कुछ लम्बे-लम्बे श्वास लें।
- अच्छा संगीत सुनें।
- उस जगह से हट जाएं।
- अपने मन को समझाएं कि मुझे क्रोध नहीं करना है, इससे मेरी ही हानि है।
- प्रतिदिन व्यायाम अवश्य करें।
- व्यायाम से ग्रन्थियों पर कन्ट्रोल होता है, और उससे उचित मात्रा में रस निकलता है। न कम, न अधिक। जिससे काम, क्रोध, लोभ, मोह सभी पर नियंत्रण होता है।

आत्म-विश्वास

बच्चो ! आपको अवश्य ही जानना चाहिए कि-

- आत्मविश्वास क्या होता है?
- यह कहाँ रहता है?
- आत्मविश्वास कैसे आता है?

आत्मविश्वास क्या होता है?

हर बच्चे में भगवान ने बहुत अधिक शक्ति दी है, पर वे बच्चे जानते नहीं, इसलिए बड़े होने पर भी कमजोर बने रहते है। अन्दर की शक्ति को पहचानने का नाम ही आत्मविश्वास है। यह वह शक्ति है, जिसको पाकर बच्चे घबराते नहीं, डरते नहीं, झूठ नहीं बोलते और अच्छे काम करते हैं। जैसे-कि आत्मविश्वास शब्द से ही पता चलता है 'आत्मा में विश्वास, आत्मा में शक्ति'। शक्ति आत्मा में रहती है, इसलिए आत्मा में जितनी स्वच्छता आएगी, उतना ही शक्ति का विस्तार होगा।

ऋषि दयानन्द

प्रो. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तथा अन्तिम चरण में भारत का भाग्य एक नया मोड़ ले रहा था। सदियों से सुप्त पड़ी इस देश की चेतना अव्यक्त से व्यक्त की तरफ, सुषुप्ति से जागृति की तरफ, जड़ता से प्रगति की तरफ अग्रसर हो रही थी। इस जाग्रत् चेतना की अभिव्यक्ति का क्या रूप था? सदियों से सोई पड़ी यह चेतना जब भारत के नव-प्रभात में अँगड़ाई लेकर आँख खोलने लगी, तब १७७२ में बंगाल में राजा राममोहन राय ने और १८३४ में रामकृष्ण परमहंस तथा उसी काल के आसपास स्वामी विवेकानन्द ने जन्म लिया; १८२४ में गुजरात में महर्षि दयानन्द ने जन्म लिया; १८६३ में मद्रास में थियोसोफिकल सोसायटी ने जन्म लिया; १८८४ में महाराष्ट्र में प्रार्थना-समाज ने और दक्खन-एजुकेशन-सोसायटी ने जन्म लिया और इसी काल में मुसलमानों में चेतना के संचार के लिए सर सैयद अहमद ने जन्म लिया। ये सब भारत की विभूतियाँ थीं और इस देश के नव-निर्माण का सपना लेकर गंगा और हिमालय की इस देशभूमि का सदियों का संकट काटने के लिए प्रकट हुई थीं।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में जिन विभूतियों ने जन्म लिया उनमें से ऋषि दयानन्द पर हम आज लिख रहे हैं। ऋषि दयानन्द आए परन्तु वे समय के दास बनकर नहीं आये, समय को अपना दास बनाने के लिए आए। महापुरुष यही-कुछ करते हैं। हम समझते है कि हमें जमाने के अनुसार चलना है, महापुरुष जमाने की गर्दन पकड़कर उसे अपने अनुसार चलाते हैं। वे खुद नहीं बदलते, जमाने को बदलते हैं। तोयनबी नामक प्रसिद्ध समाज-शास्त्री ने कहा है कि यह जीवन एक ललकार है, एक चैलेंज है, आह्वान है। साधारण लोग इस ललकार को सुनकर, इस चैलेंज और आह्वान को सुनकर जीवन-संग्राम से भाग खड़े होते हैं, जमाने का रंग पकड़ लेते हैं; महापुरुष जीवन की ललकार का, जीवन के आह्वान का उत्तर देते है। वे इस चैलेंज का जवाब देते हुए जीवन की समस्याओं के साथ झूक जाते हैं, जूझते हुए प्राणों की बाजी लगा देते हैं, परन्तु इस संघर्ष में पीठ नहीं दिखाते, जमाने को पलट देते हैं।

ऋषि दयानन्द जब इस देश के रणांगन में उत्तरे, तब उन्हें चारों तरफ ललकार-ही-ललकार सुनाई दी, चारों तरफ चैलेंज ही चैलेंज नजर आए। सबसे बड़ा चैलेंज था विदेशी राज्य का। उनके सामने ललकार उठी-क्या विदेशी राज्य को बरदाश्त करोगे? ऋषि दयानन्द की आत्माने जवाब दिया- विदेशी राज्य को बर्दाश्त नहीं करूंगा। उन्होंने राजस्थान के राजाओं को अंग्रेजी शासन के प्रति विद्रोह करने के लिए तैयार करना शुरू किया। ऋषि दयानन्द के जीवन का बहुत वड़ा भाग राजस्थान के राजाओं को संगठित करने में बीता।

१८७३ में इस देश के गवर्नर जनरल लॉर्ड नॉर्थब्रुक थे। कलकत्ता के लॉर्ड बिशप ने लॉर्ड नॉर्थब्रुक तथा ऋषि दयानन्द में एक भेंट का आयोजन किया। इस भेंट में दोनों में जो बातचीत हुई उसका विवरण लॉर्ड नॉर्थब्रुक ने अपनी डायरी में लिखा। यह डायरी लन्दन में इण्डिया-हाउस में आज भी सुरक्षित है।

लॉर्ड नॉर्थब्रुक ने कहा- ''पण्डित दयानन्द, आप मत-मतान्तरों का खण्डन करते हैं। हिन्दुओं, ईसाइयों, मुसलमानों के धर्म की आलोचना करते हैं। क्या आप सरकार से किसी प्रकार की सुरक्षा नहीं चाहते।

ऋषि दयानन्द ने उत्तर दिया- ''अंग्रेजी राज्य में सबको अपने विचार प्रकट करने की पूरी स्वतन्त्रता है इलिए मुझे किसी से किसी प्रकार का खतरा नहीं है।'' इस पर खुश होकर गवर्नर जनरल ने कहा कि ''अगर ऐसी बात है तो आप अपने व्याख्यानों में अंग्रेजी राज्य के उपकारों का वर्णन कर दिया कीजिए। अपने व्याख्यान के प्रारम्भ में जो आप ईश्वर-प्रार्थना किया करते हैं, उसमें देश पर अखण्ड अंग्रेजी शासन के लिए भी प्रार्थना कर दिया कीजिए।''

यह सुनकर ऋषि दयानन्द ने उत्तर दिया- ''श्रीमान् जी, यह कैसे हो सकता है? मैं तो सायं-प्रात: ईश्वर से यह प्रार्थना किया करता हूँ कि इस देश को विदेशियों की दासता से शीघ्र मुक्त करे।''

लॉर्ड नार्थर्थब्रुक ने इस घटना का उल्लेख अपनी उस साप्ताहिक डायरी में किया जो वे भारत से प्रति-सप्ताह हर मैजेस्टी महारानी विक्टोरिया को भेजा करते थे। इस घटना का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं कि ''मैंने इस बागी फकीर की कड़ी निगरानी के लिए गुप्तचर नियुक्त कर दिए हैं।''

देश की परतन्त्रता ही ऋषी दयानन्द के सम्मुख चैलेंज बनकर नहीं खड़ी थी, वे अपने समाज में जिधर नजर उठाते थे उन्हें चैलेंज-ही-चैलेंज दीख पड़ते थे, उनके कानों में देश की समस्याओं की ललकार-ही-ललकार सुनाई पड़ती थी। वे महापुरुष इसलिए थे क्योंकि वे किसी चैलेंज को सामने देखकर दम तोड़कर नहीं बैठते थे, किसी ललकार को सुनकर चुप नहीं रहते थे। समाज की हर समस्या से वे जूझे, हर फंड पर डटे, हर अखाड़े में छाती तानकर खड़े रहे। कौन-सी समस्या थी जो इस देश के महावृक्ष को घुन की तरह नहीं खा रही थी? स्त्रियों को पर्दे में बन्द रखा जाता था, उन्हें शिक्षा का अधिकार नहीं था। ऋषि दयानन्द ने रूढ़िवादी समाज की इस ललकार का उत्तर दिया। ऋषि दयानन्द ने पहले-पहल आवाज उठाई कि स्त्रियों को वे सब अधिकार हैं जो पुरुषों को हैं। जैसे वेद-मन्त्रों का साक्षात्कार करनेवाले पुरुष ऋषि हैं, वैसे वेद-मन्त्रों का साक्षात् करनेवाली स्त्री ऋषिकाएँ भी हैं। लोपामुद्रा, श्रद्धा, विश्ववारा, यमी, घोषा आदि ऋषिकाओं के नाम पाये जाते हैं। ऋषि दयानन्द ने ''स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्'' के नारे को रद्दी की टोकरी में फेंक दिया। 'शूद्र' संज्ञा देकर समाज के जिस वर्ग के साथ हम अन्याय तथा अत्याचार कर रहे थे, जिन्हें हमने मनुष्यता के अधिकारों से भी वंचित कर दिया था, उनके अधिकारों की रक्षा के लिए वे उठ खड़े हुए। ऋषि दयानन्द ने सामाजिक व्यवस्था के लिए एक नया दृष्टिकोण दिया। उन्होंने जन्म की जात-पॉत को मानने से इन्कार कर दिया। जब जन्म से जात-पाँत ही नहीं, न कोई जन्म से बड़ा न जन्म से छोटा, तब शूद्र कौन और अछूत कौन? समय था जब समाज के एक वर्ग के लिए 'अछूत' शब्द का प्रयोग किया जाता था।

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-७ अंक-९ मुम्बई सितम्बर- - २०१६ पृष्ठ-१६ मूल्य- रु. ९/-

भाद्रपद २०७२ (२०१६) Post Date : 25-09-2016

MCN/136/2016-2018
MAHRIL 06007/31/12/18-TC

पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : **संगीत आर्य**

मुद्रक एवं प्रकाशक : **चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटिंग प्रेस,**
२६, मंगलदास रोड, मुंबई–२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन,
वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई–४०० ०५४.
से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८००/२६६०२०७५

प्रति, ______________________

____

____

टिकट

आज हम उसके लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग करते हैं। परन्तु किसी को हम 'अछूत' कहें, या 'हरिजन' कहें- अर्थ दोनों का एक ही है, वह हमसे अलग है, एक पृथक् वर्ग का है, हमारे समाज का हिस्सा नहीं है। आर्यसमाज ने 'अछूत' शब्द का प्रयोग नहीं किया, 'हरिजन' शब्द का प्रयोग भी नहीं किया। आर्यसमाज ने 'दलित' शब्द का प्रयोग किया। 'दलित'- अर्थात्, जिसे मैंने दल रखा है, जिसके अधिकारों को मैंने ठुकरा रखा है। 'अछूत' शब्द में जिसे 'अछूत' कहा गया उसे बुरा माना गया, 'दलित' शब्द में मैंने दूसरे को दबाया इसीलिए बुरा माना गया। ये दोनों शब्द एक ही भाव को व्यक्त करते हैं, परन्तु दोनों में दृष्टिकोण कितना भिन्न हो जाता है! आर्यसमाज ने इस बात को समझा कि जब हम अछूत' शब्द का, या 'हरिजन' शब्द का प्रयोग करते हैं, तब हम उन्हें समाज की समस्या ही बने रहने देते हैं, चैलेंज चैलेंज ही बना रहता हैं। यही कारण है कि पहले 'अछूत' एक वर्ग बना हुआ था, अब 'हरिजन' एक वर्ग बन गया है, और समाज के एक पृथक् वर्ग के तौर पर अपने अधिकार माँगता है। जब तक हम 'अछूत' या 'हरिजन' बने रहेंगे तभी तक तो विशेष अधिकारों की माँग कर सकेंगे! इसलिए जिस रास्ते पर हम चल रहे हैं उस पर तो 'अछूत' या 'हरिजन' बने रहना नफे का सौदा है। आज अनेक ब्राह्मण बालक अपने को 'अछूत' या 'हरिजन' कहलाना पसन्द करते हैं क्योंकि उससे उन्हें छात्रवृत्ति मिलती है। राजनीति के अखाड़े के अनेक उम्मीद-वार अपने को 'अछूत' या 'हरिजन' सिद्ध करने के लिए अदालतों में दौड़ते हैं क्योंकि इससे उन्हें असेम्बली या पार्लियामेंट की मैम्बरी मिलती है। परन्तु इससे क्या समाज की समस्या हल होगी? ऋषि दयानन्द इस समस्या से जूझे थे। उन्होंने समाज के शब्दकोष से 'अछूत' शब्द को ही हटा दिया था।

समाज जीता-जागता एक चैलेंज है, चारों तरफ से ललकार है, आह्वान है, पुकार है। हम इस चैलेंज का जबाब, इस ललकार और आह्वान का प्रत्युत्तर देंगे या नहीं देंगे? हम समाज के चैलेंज को देखते हुए भी नहीं देखते, ललकार को सुनते हुए भी नहीं सुनते। शरीर में पीड़ा हो, उसे जो अनुभव न करे वह जीवित नहीं मृत है; समाज के शरीर में रोग हो, उसे जो दूर करने के लिए छटपटाने न लगे वह मृत-समान है। ऋषि दयानन्द ने समाज के शरीर की पीड़ा को, इसके रोग को अनुभव किया, इसीलिए वे जीवित थे। उन्हें तो अपने समय का सारा समाज एक चैलेंज के रूप में दीखा। हिन्दुओं का रूढ़िवाद एक महान् चैलेंज था। जहाँ देखो वहाँ प्रथा की दासता, रूढ़ि की गुलामी, जो चला आ रहा है उससे इधर-उधर नहीं जा सकते। ऋषि दयानन्द ने रूढ़िवाद की इस थोथी दीवार को एक धक्के में गिरा दिया। अगर पौराणिक धर्म उन्हें एक चैलेंज के रूप में दीख पड़ा तो ईसाइयत और इस्लाम भी उन्हें चैलेंज देता हुआ दीख पड़ा। हिन्दुओं की जड़ जहाँ अपने कर्मों से खोखली हो रही थी, वहाँ ईसाइयत तथा इस्लाम भी उसे कमजोर करने में कुछ उठा नहीं रख रहे थे। ऋषि दयानन्द जहाँ अपनों से जूझे वहाँ बाहरवालें से भी उसी तरह से जूझे। वे पौराणिक मतवादियों से, ईसाइयों से, मुसलमानों से- सबसे जूझ पड़े। दुनिया-भर के गन्द को जला डालने की उनमें हिम्मत थी। वह एक सूरमा थे जो दुनिया-भर के रूढ़िवाद से टक्कर लेने के लिए उठ खड़े हुए थे।

ऐसे लोग दुनिया को बदल देने के लिए पैदा हुआ करते हैं। वे आते हैं, एक नई लहर चला जाते हैं, संसार को एक नया दृष्टिकोण दे जाते हैं। पुराना जड़वाद उन्हें बर्दाश्त नहीं कर सकता, और वे उस पुराने जड़वाद को बर्दाश्त नहीं कर सकते। वे जहर उगलते हैं, आग उगलते हैं, कूड़े-कर्कट को राख करते चले जाते हैं। लेकिन यह दुनिया भी ऐसी है कि उन्हें देर तक बर्दाश्त नहीं कर सकती। वे भी इसके लिए तैयार होते हैं। सुकरात अपने जमाने को बदलने के लिए आया था, उसे जहर का प्याला पीना पड़ा। ईसामसीह एक नई दुनिया का सपना लेकर आया था उसे जिन्दा सूली पर लटक जाना पड़ा। दयानन्द अपने देश और जाति को नए ढाँचे में ढालने को आया था, उसे दूध में घुला जहर पीकर प्राण गँवाने पड़े। गांधी एक नया संसार बना रहा था, उसे गोली का शिकर हो जाना पड़ा। यह दुनिया, इसको बदल देनेवालों को बर्दाश्त नहीं करती। परन्तु जहर देनेवाले, गोली चलानेवाले, तलवार उठानेवाले देखते हैं, और हाथ मल-मलकर देखते हैं कि जहर पीकर, गोली खाकर और प्राण देकर जो चले जाते हैं वे अपने पीछे एक ऐसी शक्ति छोड़ जाते हैं जो एक नवीन संसार का निर्माण कर देती है, एक नई दुनिया बना देती है। ऋषि दयानन्द भी अपने जमाने से जूझे, जमाने ने उन्हें जहर दे दिया, लेकिन जहर पीने के बाद विदाई की वेला में उनसे जो शक्ति की धारा फूटी उसने सदियों से चित पड़ी हुई इस भूमि का नक्शा ही बद्दल दिया। परमात्मा करे, हमारा देश भारत, महर्षि दयानन्द के सपनों का साकार रूप होकर महानता में हिमालय-सा, पवित्रता में गंगा-सा और विश्व में शान्ति की धारा बहाने में चन्द्रमा-सा उठ खड़ा हो।